समृद्ध और सबल भारत का स्वप्न-दृष्टा-

किसान-मसीहा चौधरी चरणसिंह

(1902-1987)

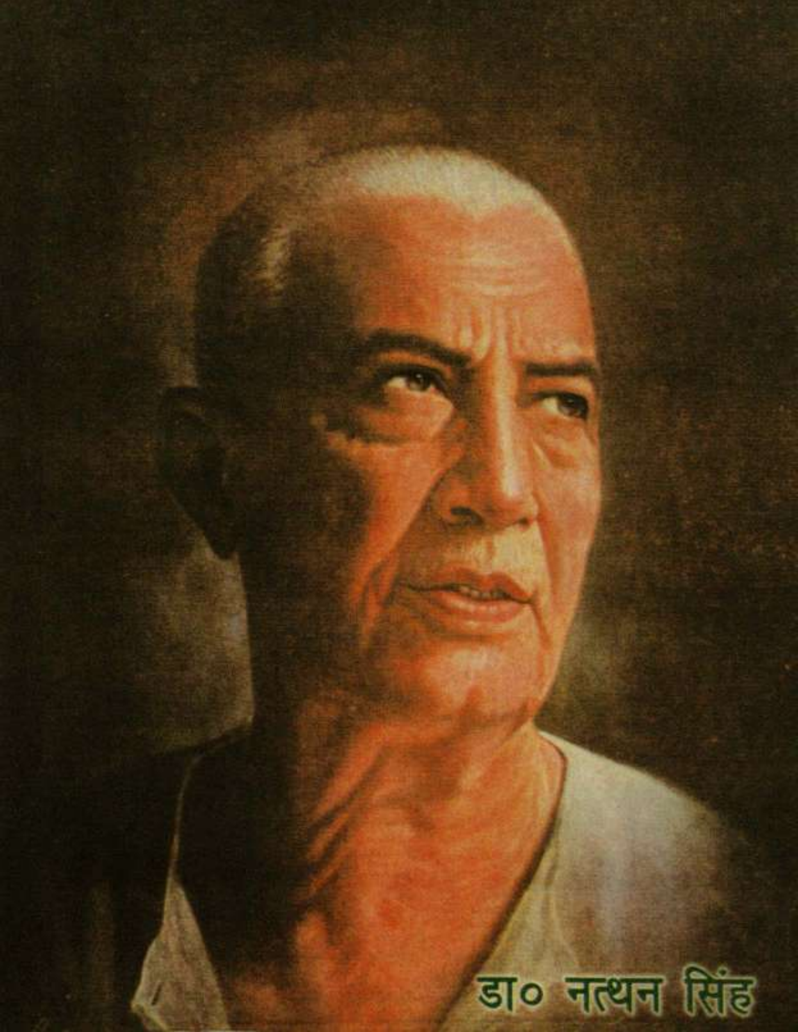

डा० नत्थन सिंह

समृद्ध और सबल भारत का स्वप्न-दृष्टा–

किसान-मसीहा चौधरी चरणसिंह

(1902-1987)

समृद्ध और सबल भारत का स्वप्न-दृष्टा–

किसान-मसीहा चौधरी चरणसिंह

(संक्षिप्त जीवनी)

लेखक

डा. नत्थनसिंह

किसान-ट्रस्ट

प्रथम संस्करण : 2002

© : किसान-ट्रस्ट

मूल्य : 40.00

प्रकाशक : ए. वी. सेतुमाधवन
किसान-ट्रस्ट, 12, तुगलक रोड
नई दिल्ली-110011

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

भूमिका

मेरे पूज्य पिताश्री, स्वर्गीय चौधरी साहब एक ऐसे पिता थे जो अपनी संतान को भारतीय संस्कृति के परिवेश में योग्य बनाने की कोशिशों में, अपने सुख और शांति के क्षणों का बलिदान कर दिया करते थे। उनकी छाया में रहकर मैंने ज्ञान का अर्जन किया था। उसके आधार पर ही मुझे अमेरिका के सम्पन्न तथा सुखी वातावरण में स्वयं को स्थापित कर लेने का अवसर मिला था।

वहां हर प्रकार का सुख और सम्पदा मुझे प्राप्त थी, फिर भी मेरी आत्मा को शांति नहीं मिल रही थी। मैं निरंतर यहां के किसान की ईमानदारी, कठोर परिश्रम, उत्कट देशभक्ति और उनके लगातार होते शोषण के विषय में सोचता रहता था।

एक इरादा लेकर, जब मैं भारत आया और स्वर्गीय चौधरी साहब के सामने अपना विचार रखा, तब उनका कहना था–देश और समाज के हितों की रक्षा के उद्देश्य से जो लोग राजनीति के रास्ते पर चलते हैं, उनके लिए यह रास्ता कांटों भरा होता है, लेकिन जो लोग दूसरों के जीवन में सुख तथा शांति लाने के लिए इस मार्ग को चुन लेते हैं, उनके पैरों में जितने कांटें चुभते हैं, उतना ही अधिक सुख उनको मिलता है। इसी सुख और आत्मा के उत्कर्ष की कामना से मैंने कांटों भरी राजनीति की यह डगर चुनी है। मैं, उनके पद-चिन्हों पर चलने का पूरा प्रयास करूंगा।

मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक से स्वर्गीय पिताजी के चिंतन और कर्मों की विस्तृत एवं स्पष्ट जानकारी पाठकों को मिल सकेगी।

अजित सिंह
अध्यक्ष, किसान ट्रस्ट

प्राक्कथन

स्वर्गीय चौधरी चरण सिंह एक साधारण किसान-परिवार में पैदा हुए थे और लोकहितैषी अपने कामों एवं उत्कट देशभक्ति के बल पर, भारत के प्रधानमंत्री के आसन तक पहुंच गये थे। यहां तक पहुंचने का उनका उद्‍देश्य, देश के संसदीय लोकतंत्र को मजबूत करना, आतंकवाद के दानव को निष्प्राण बनाना, प्रशासन-तंत्र में गहरी जड़े जमाये बैठे भ्रष्टाचार को मिटाना, गांव और शहर की आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक प्रगति का, समान स्तर पर विकास करना, वर्ग तथा जाति-आधारित समाज को वर्गीय तथा जातीय संकीर्णता से मुक्त बनाना, देश की आर्थिक पर-निर्भरता को दूर करना, भारतीयों में राष्ट्रीयता के भाव भरना और उनमें प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के प्रति लगाव पैदा करना था। इस दृष्टि से, उनकी गणना, संसार के उन चंद विचारकों में की जा सकती है, जिन्होंने इस पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणियों को समृद्ध, सुखी और सबल बनाने के स्वप्न देखे हैं।

हमारे सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में, इस प्रकार के स्वप्न देखने वाले अनेक लोग पैदा हुए हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश केवल स्वप्न देखने वाले ही थे, अपने स्वप्नों को मूर्त रूप देने वाले वे नहीं थे। चौधरी साहब, ऐसे लोगों से इस अर्थ में अलग थे कि उनमें अपने विचार तथा भावों को साकार रूप प्रदान करने की जबरदस्त इच्छाशक्ति तथा ताकत थी। वह उच्च-कोटि के उदात्त विचारक होते हुए भी कर्मठ इंसान थे और भावुक तथा अति संवेदनशील होते हुए भी भ्रष्टाचारियों को दण्डित करने में नितांत कठोर थे। उनका विशेष गुण था कथन और कर्म की एकता, विचार एवं कार्य का सामंजस्य और मानवीय संवेदना एवं प्रशासकीय दायित्व के प्रति निष्ठा। पांच दशक के लोकतंत्र के इतिहास में, बहुत कम लोग, इन गुणों से सम्पन्न देखने को मिलते हैं।

उत्तर-प्रदेश की कांग्रेस में, एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में, आपने अपने राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ किया था, लेकिन कांग्रेस-नेताओं की उद्योगपति

समर्थक संकीर्ण नीति के कारण, कांग्रेस-संगठन से आपका मोहभंग होना प्रारम्भ हो गया था, जिसकी चरम परिणति संविद सरकार के गठन में हुई। पर संविद सरकार के कुछ घटकों की दलीय निष्ठा एवं लोकहित के प्रति उदासीनता तथा कांग्रेसी नेताओं की अवसरवादिता के कारण, उनका प्रयोग वांछित सफलता की सीमा तक नहीं पहुंच पाया। इतने पर भी, आपको यह सिद्ध कर पाने का विशेष श्रेय मिला कि जन-हित की उपेक्षा करने वाले बड़े से बड़े दल तथा नेता को जनता नकार सकती है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रारम्भ किये गये 'समग्र-क्रांति' के आन्दोलन को सफलता की चरम सीमा तक पहुंचाने का विशेष श्रेय भी आपको प्राप्त है। 'समग्र-क्रांति' आन्दोलन के समर्थन के मूल में भी उनका उद्देश्य राष्ट्रकी शक्ति तथा समृद्धि का उपार्जन था, जो संगठन-कांग्रेस के नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण, अधिक सफल नहीं हुआ। इस विफलता से निराश न होना और देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों को, देश की आबादी के बहुसंख्यक किसानों की शक्ति से अवगत कराना, उनका एक विशेष गुण था। 23 दिसम्बर 1978 की बोट-क्लब पर हुई किसान-रैली इसका प्रमाण है। किसान तथा ग्रामीण मजदूर की उभरती ताकत से देश के प्रतिक्रियावादी पुराने राजनीतिक संगठनों, सत्ता पाने के लालच में डूबे कुछ नये उभरते हुए दलों और उद्योगपतियों की नींद हराम हो गयी थी। अतः वे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, किसान-समर्थक सरकार के पतन के लिए सक्रिय हो उठे थे। बढ़ती आयु, संघर्षों से शिथिल शरीर और रोग के प्रकोप के कारण, वह इन विरोधी शक्ति को, सफल उत्तर वह न दे सके और न अपने मन का समृद्ध एवं सबल भारत का निर्माण करने का अवसर ही उनको मिला। फिर भी देश को ऐसी अर्थनीति देने का श्रेय अवश्य पा गये, जिस पर चले बिना न तो देश की गरीबी दूर हो सकती है, न बेकारी। उनकी नीति का जादू यह है कि उनका घोर विरोधी भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

इस स्थिति की कल्पना करके, विचारक एवं चिंतक चौधरी साहब ने, देश के नेता तथा जनता के सामने, दो आदर्श खे थे, पहला 'गांव की ओर चलो' और दूसरा 'सबल किसान-संगठन बनाओ'। यदि भारत की परवर्ती सरकारों ने 'गांवों की ओर चलो' अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र का विकास करो की नीति अपनायी होती तो विकास-कार्यक्रम के क्षेत्र में दुनिया के 174 देशों में भारत का स्थान 128वां न होता। इससे सिद्ध है कि परवर्ती सरकारें और नेता आत्मकेन्द्रित या दलीय स्वार्थों में डूबे रहे। राष्ट्र के विकास के उनके नारे, कोरे नारे ही रहे।

स्वार्थी तत्वों से देश की समृद्धि और जनता के सुख को बचाने के लिए उनका दूसरा आदर्श था सबल किसान-संगठन की रचना। उनको भारतीय इतिहास के इस तथ्य का सम्यक् ज्ञान था कि पूंजीपतियों, पुरोहितों, राजा-महाराजाओं उनके मंत्रियों ने देश की सम्पत्ति का भोग किया था और बाहरी आक्रमणों के सामने घुटने टेक दिये थे। दूसरी ओर, किसानों ने उनका प्रतिरोध किया है और बहुतों को मार-पीटकर देश से बाहर निकाल दिया था। उनकी दृष्टि से, पहले वर्ग के चारों समुदाय, राष्ट्र के शोषक थे और किसान-समाज उसका रक्षक तथा पोषक था। यही कारण है कि उन्होंने सदैव किसान-हित को अपनी राजनीति का मेरुदण्ड बनाया। उनका यही चिंतन और कर्म का रास्ता देश की समृद्धि, कल्याण और सबलता की ओर जाता है। इस मार्ग की अवहेलना करके कोई नेता अथवा राजनीतिक दल देश को समृद्धि की ओर नहीं ले जा सकता। इतना अवश्य है कि झूठे आश्वासन देकर कुछ समय तक, शाही ऐश अवश्य कर सकता है।

एक कर्मयोगी राजनीतिक नेता की जीवनी में निहित उसके कर्म एवं चिंतन की राष्ट्र-सापेक्ष दिशा का विवरण प्रस्तुत करके, युवा-पीढ़ी में देशानुराग तथा समाज के गरीब तथा साधनहीन वर्गों के प्रति लगाव उत्पन्न करना, इस पुस्तक का एकमात्र उद्देश्य है।

मेरा विश्वास है कि किसान-मसीहा चौधरी चरण सिंह की जीवन-गाथा, वैयक्तिक स्वार्थों एवं दलीय-हितों के अंधकार में भटके राजनीतिक नेताओं के पथ को आलोकमय कर सकेगी।

नत्थनसिंह

अनुक्रम

1. पुरखों की क्रांतिकारी परम्परा के सफल निर्वाहक 1
2. परिवार और बाल्यकालीन शिक्षा 9
3. उच्च शिक्षा के उन्नत शिखर की ओर 13
4. परिवार-पोषण की दिशा में 37
5. राजनीतिक उत्कर्ष की दिशा 41
6. सन् 1947 से 1977 तक की राजनीतिक-यात्रा के विविध पड़ाव 49
7. उत्तर प्रदेश के विभिन्न मंत्रालयों में चौधरी साहब की कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां 56
8. कांग्रेस-नेताओं की संकीर्ण राजनीति और चौधरी साहब के नये कदम 62
9. एक नये अध्याय का आरम्भ और अन्त 67
10. जनता पार्टी के गठन में योगदान 74
11. जनता-पार्टी सरकार का आदि और अन्त 82
12. केन्द्र की जनता-पार्टी सरकार तथा उसके प्रधानमंत्री की नीतियों से मोह-भंग 91
13. प्रधानमंत्री की कुर्सी की दिशा में एक किसान के बढ़ते कदम 98
14. एक विचारक के रूप में 108
15. चौधरी साहब की आर्थिक नीति 118
16. सभ्यता, संस्कृति और व्यावहारिक ज्ञान विषयक चौधरी साहब की मान्यताएं 142
17. चौधरी साहब पर जातिवादी तथा कुलक वर्ग के समर्थक होने का आरोप और उसकी यथार्थ स्थिति 159
18. बज्रादिप कठोर कुसुमादिप कोमल 172
19. चौधरी साहब के व्यक्तित्व की परिचायक एक ऐतिहासिक घटना 177
20. निष्कर्ष 180

पुरखों की क्रांतिकारी परम्परा के सफल निर्वाहक

स्वर्गीय चौधरी चरण सिंह अपने देशभक्त पुरखों की क्रांतिकारी परम्परा का सफल निर्वाह करने वाले थे। आपने बड़े से बड़े राजनीतिक प्रलोभन को लात मार दी, पर देश की अधिकांश जनता के लिए अलाभकारी नीति के विरोध में मजबूती के साथ सदैव खड़े रहे। जिन नेताओं ने आम आदमी के हितों की उपेक्षा करके, उद्योगपतियों को लाभ पहुंचाया था, उनका आपने विरोध हमेशा किया। यही नहीं आपने कांग्रेस-पार्टी के अध्यक्षों की संकीर्ण नीतियों का तर्कपूर्ण खंडन भी किया था और पंडित नेहरू जैसे शक्तिशाली प्रधानमंत्री की सहकारी खेती विषयक अलभाकारी नीति के विपक्ष में बोलने का साहस भी किया था। आपने अपने राजनीतिक भविष्य को दांव पर लगा दिया, पर जनहितकारी परम्परा का त्याग नहीं किया। जनता पार्टी के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के साथ भी वह इसी नीति को अपनाते रहे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनमें बड़े-से-बड़े पद को त्याग देने का नैतिक बल था, पर अपने सिद्धांत के विपरीत, व्यक्ति या दल के साथ, गठबंधन करके, सत्ता में बने रहने का मोह न था। उनका साध्य था, देश के आम आदमी का हित, उनके लिए सत्ता इस साध्य के पाने का साधन मात्र थी, स्वयं साध्य नहीं। यही कारण है कि आज प्रायः प्रत्येक दल, उनकी नीति का समर्थन करता है और उनको किसानों का प्रबल हितैषी मानता है। साथ ही, किसानों को भारत की अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी स्वीकार करता है। अस्तु, उनके पुरखों की उस देशभक्तिपूर्ण क्रांतिकारी विरासत पर प्रकाश डालना असंगत न होगा, जिसके संस्कार आपको जन्म से ही प्राप्त हुए थे।

चौधरी साहब के पूर्वजों का सम्बंध, बल्लभगढ़ के क्रांतिकारी राजा नाहर सिंह के साथ था और नाहर सिंह के पूर्वजों का सम्बंध, आगरा-मंडल तथा भरतपुर के महान् क्रांतिकारी किसानों के साथ। इतिहास की यह सच्चाई है कि मुगल-सम्राट अकबर की नीति, प्रशासन के क्षेत्र में समतावादी थी, पर आर्थिक-क्षेत्र में इजारेदारी

की पक्षधर थी। आगरा-मंडल के किसानों ने, इजारेदारी की नीति को चुनौती दी थी। अकबर का आदेश था कि किसान लगातार तीन वर्ष तक नील की खेती करेगा। किसानों ने खेतों में नील के पौधे तो लगा दिये, पर थोड़ा बड़े होने पर, उनको उखाड़ कर फेंक दिया। यह था, सम्राट की इजारेदारी वाले आदेश का क्रांतिकारी विरोध। फलतः तीन वर्ष होने से पहले ही, अकबर ने अपना आदेश वापस ले लिया।[1] अपने आदेश को वापस लेने से पूर्व सम्राट ने किसानों को कुचलना भी चाहा था, पर सफलता नहीं मिली। यह किसान की जीत थी और सम्राट की हार। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि आगरा-मंडल में क्रांति की हवा बहती थी।[2] इसी हवा का प्रभाव था कि यहां का किसान न तो अकबर के शासन में दबा, न जहांगीर तथा शाहजहां के शासन में। औरंगजेब ने तो उसको मूल से ही नष्ट करने की कोशिशें की थीं, पर किसान की क्रांतिकारी चेतना समाप्त नहीं हुई उलटे औरंगजेब के शासन को दीमक लगनी प्रारम्भ हो गयी।

यथार्थ में, आगरा-मंडल के किसानों के सामने श्रीकृष्ण-बलराम की महान् क्रांतिकारी परम्परा थी, जिन्होंने कंस, जरासंघ व शिशुपाल आदि सम्राटों को भी चुनौती दी थी और इन्द्र के गर्व पर भी प्रहार किया था। जिस इन्द्र को देवता मानकर पूजा जाता था, श्रीकृष्ण ने उसकी पूजा बन्द कराके गोधन की पूजा प्रारम्भ करा दी थी। क्रांति की यही लहर, आगरा-मंडल के परिवेश में सदैव चलती रही थी। बाद के मुगल-काल में भी यह लहर यथावत् चल रही थी। इसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

इतिहास इस बात का गवाह है कि सन् 1660 में, जनपद मथुरा के एक जाट किसान नन्दराम ने मुगल-शासन को लगान न देने का आन्दोलन प्रारम्भ किया था। असल में यह आन्दोलन, लगाव वसूल करने वाले मुगल-अधिकारियों के नापाक इरादों, बेईमानी तथा अपमानकारी हरकतों को एक चुनौती थी। साथ ही, सम्राट अकबर के शासनकाल के किसानों की क्रांतिकारी परम्परा का प्रवर्तन भी था। मुगल-शासन ने पूरी ताकत लगाकर, नन्दराम के आन्दोलन को कुचल दिया था, पर उसकी चिंगारियां अभी तक सुलग रही थीं। सिर्फ नौ वर्ष बाद, सन् 1669 में अनुकूल हवा पाकर वे धधक उठीं। औरंगजेब का शासन आर्थिक-उत्पीड़न के अलावा धार्मिक शोषण पर भी क्रेन्द्रित था। मथुरा का गवर्नर अब्दुल नवी मथुरा के मंदिरों का ध्वंस कर रहा था। उसने कटरा केशवदेव के मंदिर में लगे दारा द्वारा दिये गये पारदर्शी पत्थर को निकलवा कर जनवरी 1670 में मंदिर

को ध्वस्त करा दिया।[3] फलतः मथुरा की धर्मप्राण जाट जनता पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। सन् 1669 में, वहां की जनता ने, गोकुला के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। विद्रोही किसानों ने अब्दुल नबी को 19 मई के आसपास मार डाला।[4] मुगल-शासन ने विद्रोही किसानों से इस शर्त पर समझौता करने का प्रयास किया कि वे लूट का सामान वापस कर दें।[5] लेकिन विद्रोहियों ने समझौता करने से इन्कार कर दिया।[6] तब औरंगजेब ने रदनदाज खां, हसन अली तथा अन्य अधिकारियों को किसानों को कुचलने के लिए भेजा और उनके मार्ग-दर्शन के लिए दिल्ली से स्वयं वहां गया।[7] किसानों ने एक लम्बी और अनवरत लड़ाई लड़ी।[8] पर युद्ध-सामग्री के अभाव में कई हजार किसान मारे गये।[9] जब प्रतिरोध असम्भव हो गये। तो स्त्रियों ने कुओं तथा तालाबों में कूदकर अपनी इज्जत बचाई।[10]

गोकुला और उसके साथी किसानों तथा उनकी पत्नियों की यह शहादत बेकार नहीं गयी। औरंगजेब के 200 घुड़सवार सैनिक, 1000 बंदूकची, 1000 तीरंदाज, 1000 राकेट, 25 तोपें और 1000 खाई खोदने वालों की सेना के सामने किसान विवश अवश्य हो गये[11], लेकिन शत्रु के चार हजार सैनिकों को मारकर, अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए किसानों में अदम्य भावना भर गये थे।

किसानों की स्वाधीनता की भावना का नया अंकुर, सिनसिनी (भरतपुर) के एक किसान भज्जासिंह के पुत्र राजाराम के रूप में, सन् 1685 में फूट पड़ा। राजाराम ने अपने साथी किसानों को गुरिल्ला-युद्ध का प्रशिक्षण दिया और प्रशिक्षित सैनिकों को लेकर आगरा के मुगल-गवर्नर सफी खां पर आक्रमण कर दिया। उसको घर में ही घेर दिया और उसके शस्त्रागार तथा कोश को अपने काबू में कर लिया। उसके बाद, मुगल-दरबार के प्रख्यात योद्धा अगर खां तूरानी को, जो धौलपुर के पास डेरा डाले पड़ा था, मौत के घाट उतार दिया।[12] तत्पश्चात् सिकन्दरा (आगरा) के रक्षक अब्दुल फजल को घेरा। वह तो बचकर निकल गया, किन्तु उसका खजाना तथा हथियारों का भण्डार उसके हाथ लगा।[13] इन दोनों विजयों से राजाराम तथा उसके साथी किसानों का मनोबल बहुत बढ़ गया था। अतः उसने मुगल-शासन के सबल-स्तम्भ, हैदराबाद के प्रख्यात वीर मीर इब्राहिम महावत खां को सिकन्दरा के पास दबोच लिया।[14] सन् 1688 की इस घटना से राजाराम को इतने घोड़े, हथियार और धन मिला, जिससे उसकी वीरता की ख्याति फैल गयी। फलतः आगरा का तत्कालीन सूबेदार शाइस्ता खां घर से बाहर निकलने का साहस न कर सका।[15] इन घटनाओं का फल यह निकला

कि एक ओर तो किसानों तथा अन्य जनता पर होने वाले अत्याचार ठहर गये, दूसरी ओर, महिलाओं के अपहरण रुक गये और किसान-जनता का मनोबल बांसों ऊंचा हो गया।

मुगल-दरबार के मुस्लिम इतिहासकारों तथा उसके अनुकरण पर भारतीय इतिहासकारों ने, इन किसानों को लुटेरा कहा है। विदेशी सरकार के खजाने तथा शस्त्रागारों को लूटने वाले विद्रोही तथा क्रांतिकारी होते हैं, लुटेरे नहीं। राजाराम, शिवाजी की परम्परा का, देशभक्त और विद्रोही था।[16]

चौहान तथा शेखावत राजपूतों के बीच संघर्ष में फैसला कराने गये राजाराम को, झाड़ी में छिपे एक सैनिक की गोली लगी और वह स्वर्ग सिधार गये, पर उनके द्वारा बनवाई गयी सुदृढ़ गढ़ियां रह गई और रह गई स्वाधीनता के मतवाले किसानों की हुंकारें।[17]

राजाराम के बाद, किसान-विद्रोह का परचम, सन् 1695 में सिनसिनी (भरतपुर) के एक अन्य जाट-किसान चूरामन ने लहराया। वह वीर, साहसी, योद्धा के अलावा कूटनीतिज्ञ भी था। शस्त्र, सम्पत्ति और शक्ति का संचय करके स्वाधीन होने का कोई अवसर उसने नहीं खोया। उसने अन्य किसानों के सहयोग से एक सबल संगठन खड़ा किया और मुगलों से छीने कोष के बल पर पन्द्रह हजार सैनिकों की एक सेना खड़ी कर ली। इसी के बल पर उसने शस्त्र और सम्पत्ति एकत्र की तथा गोपाल सिंह बधौरिया, किशनगढ़ के राजबहादुर और शाही-सेना के प्रयासों को विफल कर दिया तथा अपने खिलाफ मोर्चाबंदी करने वाले जफरखां, मुजफ्फरखां एवं मुहम्मद खां बंगश को सफल चुनौती दी।[18] उसने आठ वर्षों तक जयपुर नरेश जयसिंह तथा मुगल-सेना के सम्मिलित प्रयासों को असफल बना दिया। इसका कारण चूरामन को सैनिक शक्ति नहीं, वरन् जनता का सहयोग और उसकी मारो तथा भागो वाली युद्ध-नीति थी। मुगल-सेना उसको मथुरा पर घेरती थी तो वह धौलपुर की ओर चला जाता था, मुगल-सेना जब धौलपुर पहुंचती थी, तो वह अलीगढ़ की ओर भाग जाता था। इस तरह वह घूमता रहता रहा और मुगलों को छकाता रहा। मार्च सन् 1712 में एक दिन ऐसा आया कि जब मिर्जा शाहनवाज ने, राजकुमार अजीमुश्शान के विपरीत, युद्ध में चूरामन से सहायता मांगी।[19]

एक बार, उसने अफगान, मुगल तथा उमर खां रुहेला की सम्मिलित सेना को धूल चटाकर अपनी शक्ति का परिचय दिया था। फलतः बादशाह फर्रुखसियर ने भरतपुर, मलाह, अद्यापुर, बाढ़ा और इकरन का क्षेत्र उसको जागीर के रूप

में दे दिया।[20] इसके बाद, दिल्ली और धौलपुर तक के राजमार्ग पर चुंगी वसूली करने का अधिकार भी उसको दे दिया गया। इस प्रकार, एक विद्रोही को पुरस्कार प्रदान किया गया। चूरामन का, केवल एक उद्देश्य था और वह था, मुगल-शासन को कमजोर करना और उसके कोष तथा शस्त्रागार के बल पर स्वतंत्र सत्ता की स्थापना करना।[21]

आगरा, मथुरा और भरतपुर क्षेत्र के किसानों की साम्राज्य-विरोधी गतिविधि को आगे बढ़ाने वाले शिव गोत्री जाट गोपालसिंह थे। 'इनके पूर्वज भटिंडा को छोड़ कर जिला गुड़गांवा के 'तिब्बत' नामक गांव में आ बसे थे, जिसे अब 'तिरमत' कहा जाता है। मुगल-साम्राज्य की शक्ति को क्षीण होते देखकर उन्होंने ही भूक्खू, जालौलिया, लावलपुर, जतौली, नगला तिरसठा, कारिज, हाजीपुर, देलाको, छपरौला, अछरौंदा, अटाली नगला आदि के जाटों का एक टोल बनाकर सन् 1705 में मथुरा-दिल्ली मार्ग पर आतंक स्थापित करके सरकारी खजानों को लूटने का कार्य आरम्भ किया और बाद में लागौन के गूजरों को अपना मित्र बनाकर अपने साथ ले लिया। फरीदाबाद के तत्कालीन मुगल-अधिकारी मूर्तिजा खां ने इन्हें दबाने के लिए दिल्ली के मुगल-दरबार से सहायता मांगी, परन्तु दिल्ली दरबार सहायता देने में सक्षम न था। यह देखकर मुर्तिजा खां ने अपनी रक्षा का यही उचित उपाय समझा कि चौधरी गोपालसिंह के साथ संधि कर ले। दिल्ली गजिटियर के अनुसार यह संधि सन् 1710 ई. में हुई थी (राजा महेन्द्र प्रताप अभिनन्दन, मथुरा, 1976) इस सन्धि के अनुसार, गोपालसिंह को स्वयं लगान वसूल करने के बाद, एक आना प्रति रुपया कटौती करके शेष रकम सरकारी खजाने में जमा कराने का अधिकार दे दिया गया। चौधरी गोपालसिंह ने आजीवन इस समझौते का निर्वाह किया।

चौधरी गोपालसिंह शिव गोत्री जाट थे, लेकिन 'तिब्बत' गांव के मूल निवासी होने के कारण, उनके वंशजों का गोत्र संभवतः तेवतिया हो गया था।

सन् 1917 में गोपाल सिंह का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद उनके पुत्र चरणदास को राजस्व वसूली का अधिकार मिल गया। लेकिन वह स्वभाव से दयालु धार्मिक प्रवृत्ति तथा त्यागी स्वभाव के आदमी थे। इसलिए राजस्व-वसूली के निर्मम, कठोर और उत्पीड़नकारी काम को करने में सफल न हो सके। इसका परिणाम यह हुआ कि मुर्तजा खां के पास राजस्व की रकम जमा कराने में असफल रहे। मुर्तजा खां ने नाराज होकर उनको गिरफ्तार करा लिया। उनको मुक्त कराने के लिए, उनके पुत्र बलराम ने एक योजना तैयार की। उसने एक संदूक में

नीचे तांबे के सिक्के रखे और उनके ऊपर स्वर्ण मुद्राएं रख दीं। उसको लेजाकर मुर्तजा खां को दिखाया एवं अपने पिता को कैद से छुड़ा लिया। इससे पहले कि मुर्तजा खां को, बलराम की इस जालसाजी का पता लगे, वे दोनों भरतपुर के राजा सूरजमल की शरण में पहुंच गये थे।

कालान्तर में, महाराजा सूरजमल के सैनिकों के बल पर, दोनों ने मुर्तजा खां पर आक्रमण करके उसको मार डाला और समस्त क्षेत्र को अपने अधिकार में करके उसे मुगल-सैनिक तथा उनके अफसरों के शोषण से छुटकारा दिला दिया। बलराम ने भरसक प्रयास किये कि क्षेत्र की जनता मुस्लिम-शासन की धार्मिक तथा आर्थिक शोषण की दुःखद अनुभूतियों को भूल जाए। उसकी ताकत तथा लोकप्रियता को ध्यान में रखकर मुगल-दरबार ने सन् 1739 में उसे बख्शी और राव की पद्वियों से अलंकृत किया। उसने बल्लभगढ़ में एक किले का भी निर्माण कराया, जो आगे चलकर क्रांतिकारी गतिविधि का मुख्य केन्द्र वन गया था। सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता-आन्दोलन के महान् विद्रोही राजा नाहर सिंह का सम्बंध इसी बल्लभगढ़ के साथ था और वह बलराम सिंह के एक देशभक्त वंशज थे।

प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के दौरान दिल्ली में अंग्रेजों के कदमों को रोकनेवाले अथवा यों कहिए कि अंग्रेजों से लड़ते भारतीय सैनिकों की शक्ति के दो स्तोत्र थे—पहला बड़ौत तथा मेरठ क्षेत्र से, संघर्षरत सैनिकों को, सामग्री पहुंचाने वाला ग्राम बिजरौल का जाट चौधरी बाबा शाहमल और दूसरा फरीदाबाद की ओर से उनकी सहायता करने वाला नाहर सिंह। शाहमल ने अंग्रेजी राज्य के सहायक बागपत को लूट लिया था और उसने दिल्ली के विद्रोही सिपाहियों के शिविरों को पहुंचाने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में अन्न एकत्र कर लिया।[22] उसने हिंडन पर बने गांवों के पुल को तोड़ दिया था, जिसके द्वारा अंग्रेज, दिल्ली में लड़ रही अंग्रेज-सेनाओं के साथ सम्पर्क स्थापित किया करते[23] थे। दिल्ली के अंग्रेज भगोड़ों को मदद देने वाले गांव देवला पर भी आक्रमण करने की योजना बनाई थी। यही नहीं, चौधरी शाहमल ने क्षेत्र की समूची जनता को विद्रोही बना दिया था, कुछ ठिकानेदार तथा बड़े जमींदार अवश्य अंग्रेजों की सहायता कर रहे थे। चौधरी शाहमल के मरने के बाद, दिल्ली में संघर्ष करते विद्रोही-सैनिकों को मिलने वाली मदद रुक गई थी। इससे उनको निश्चय ही खाद्य-सामग्री के अभाव का कष्ट सहना पड़ा होगा। भूखा सिपाही अधिक समय तक लड़ नहीं सकता। यही कारण था कि दिल्ली को अपने अधिकार में लाने में अंग्रेज सफल हो गये थे।

अंग्रेजी फौजों का दूसरा बड़ा शत्रु और दिल्ली के विद्रोही सैनिकों का बड़ा मित्र नाहर सिंह था, जो बल्लभगढ़ तथा फरीदाबाद की ओर से विविध प्रकार की सहायता दिल्ली में अंग्रेजों से लड़ती जनता तथा सेना को भेजा करता था। अंग्रेज शाहमल को तो घेरने में सफल हो गये थे, लेकिन नाहर सिंह उनके घेरे में नहीं आ पाया था। अतः उन्होंने एक चाल चली। उन्होंने बादशाह बहादुरशाह जफर की ओर से एक जाली पत्र नाहरसिंह के पास भेजा और उनको दिल्ली बुलाया गया। नाहरसिंह ने जैसे ही, दिल्ली में प्रवेश किया, वैसे ही उनकी प्रतीक्षा में सजग तैनात अंग्रेजों ने उनको घेर लिया और दिल्ली के चांदनी-चौक में फांसी दे दी।

इस घटना के बाद, अंग्रेजों ने बल्लभगढ़ की देशभक्त जनता पर अमानुषिक अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये थे। इनसे बचने और देशभक्ति की मशाल जलाये रखने के उद्देश्य से, इस क्षेत्र के तेवतिया गोत्र के जाटों के कई परिवार रातों-रात बुलंदशहर जनपद की ओर चले गये। इन्हीं परिवारों में, एक परिवार चौधरी चरण सिंह के पूर्वज श्री बादाम सिंह का भी था, जो भटौना नामक ग्राम में जाकर ठहर गया था।

यदि चौधरी साहब के अध्ययन काल से लेकर, प्रधानमंत्री के आसन तक पहुंचने की अवधि की समस्त घटनाओं का गहराई एवं तटस्थतापूर्वक विश्लेषण किया जाए तो निष्कर्ष यह निकलेगा कि उनके मन में, देश की सांस्कृतिक अस्मिता को बनाये रखने, इस्लामिक तथा ईसाई संस्कृति के भारत-विरोधी प्रभाव से जनता को बचाने और साम्राज्यवादी शक्तियों की आर्थिक दासता से देश को स्वतंत्र रखने की वही उत्कट अभिलाषा थी, जो कभी नंदराम, गोकुला, राजाराम, चूरामन आदि किसानों में थी या उनके अनुयायी बदनसिंह तथा सूरजमल में थी। वह श्रीकृष्ण के क्रांतिकारी तथा साम्राज्य-विरोधी स्वरूप से बड़े प्रभावित थे और उनके द्वारा अठारह जातियों के संघ की स्थापना से अभिभूत थे। यही कारण था कि वह धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण से उत्पीड़ित भारतीय जनता को, एक शक्ति के रूप में संगठित करने के प्रयासों में लगे रहे। इसके प्रतीक उनके दो उद्देश्य थे, भारत के ग्रामों को समृद्ध बनाया जाय और किसानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभारा जाय। 'गांव की ओर चलो' एवं 'किसान-संगठन खड़ा करो।' चौधरी साहब के इन दोनों नारों के मूल में राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि और शक्ति निहित है। इन नारों के मूल में छिपी भावना को, विस्तार के साथ, आप आगे पढ़ेंगे।

संदर्भ

1. डा. रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद, भाग-2, पृष्ठ 308, डा. इरफान हवीव, दि ऐग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया (1556-1760), पृ.80
2. वही
3. यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृष्ठ 194, सन् 1951
4. वही, पृष्ठ 201, डा. नत्थन सिंह, इतिहास पुरुष : महाराजा सूरजमल, पृष्ठ 32
5. के. आर. कानूनगो, जाटों का इतिहास, सं. डा. नत्थन सिंह, पृष्ठ 22
6. वही, पृ. 22
7. के. नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृष्ठ 23
8. डा. नत्थन सिंह, इतिहास-पुरुष महाराजा सूरजमल, पृष्ठ 34
9. वही
10. वही
11. वही
12. वही, पृष्ठ 35
13. वही, पृष्ठ 35
14. वही, पृष्ठ 34
15. वही, पृष्ठ 34
16. वही, पृष्ठ 35
17. वही, पृष्ठ 35
18. वही, पृष्ठ 37
19. वही
20. वही
21. वही
22. मेरठ गजिटियर, पृष्ठ 176, प्रकाशित 1922
23. वही
24. वही, पृ. 177

परिवार और बाल्यकालीन शिक्षा

पीछे के पृष्ठों में कहा जा चुका है कि चौधरी साहब के पितामह श्री बादाम सिंह का सम्बंध बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह के वंशजों के साथ था। देशभक्त नाहरसिंह को फांसी देने के बाद, अंग्रेज अधिकारियों ने बल्लभगढ़ क्षेत्र में अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये थे। वे स्वर्गीय नाहरसिंह के सहयोगियों को खोज-खोजकर खत्म कर रहे थे। उनकी सम्पत्ति को जब्त करना तथा उनको अपमानित करना आम बात बन गई थी। अस्तु, इस प्रताड़ना, अपमान और उत्पीड़न से बचने के लिए कई परिवार जनपद बुलंदशहर के गांवों की ओर कूच कर गये थे। चौधरी बादामसिंह भटौना नामक गांव में पहुंचे थे। यहां पहुंचने वाले लोगों की भी एक अच्छी खासी भीड़ थी। फलतः कहा जाता है कि वे धीरे-धीरे बुलंदशहर के 117 गांवों में फैल गये थे। चौधरी बादामसिंह तहसील हापुड़ के ग्राम सियासी में आकर ठहरे। इनके पांच पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े चौधरी लखपत सिंह थे और सबसे छोटे थे चौधरी मीर सिंह।

चौधरी मीरसिंह अठारह वर्ष की आयु में मेरठ के गांव नूरपुर चले आये। यहां आकर आपने कुचेसर राज्य की कुछ जमीन बटाई पर खेती करने के लिए ली। उस बंजर भूमि पर, रहने के लिए एक झोपड़ी डाली। भूमि के बीच में कुआं खोदा और बंजर भूमि को उपजाऊ बनाकर अपने परिवार का पालन करने लगे। यहीं मढ़ैया में 23 दिसम्बर सन् 1902 को चौधरी चरणसिंह जी का जन्म हुआ था! उस समय थाली बजाकर बालक के जन्म की खुशियों की सूचना दी गयी होगी, लेकिन किसी ने यह सोचा न होगा कि यह बालक एक दिन स्वतंत्र भारत का प्रधानमंत्री ही नहीं, वरन् राष्ट्र की समृद्धि की कामना करने वाले राजनीतिक नेताओं के लिए आदर्श मानव और देश के किसानों का अप्रतिम नेता बनकर, इतिहास के पृष्ठों पर अमर हो जायेगा तथा उसकी आर्थिक नीतियो का समर्थन उसके विरोधियों को भी करना पड़ेगा।

चौधरी मीरसिंह जी का परिवार बढ़ता गया। फलतः बढ़ते परिवार की

आवश्यकताओं की पूर्ति, बटाई की जमीन से होना कठिन जानकर, चौधरी मीरसिंह ने अपने कठिन परिश्रम और मितव्यता से कुछ रुपये बचा लिये थे। उनसे मेरठ जनपद के जानी खुर्द ग्राम में कुछ बीघा जमीन खरीद ली और सपरिवार यहां आकर रहने लगे। जिस समय, वह यहां आये थे, तब चौधरी चरणसिंह सिर्फ छह महीने के बालक थे। चौधरी मीरसिंह जितने परिश्रमी थे, उससे कम परिश्रमी तथा मितव्ययी उनकी पत्नी नेत्रकौर न थी। वह जनपद बुलंदशहर के ग्राम चितसोना अलीपुर की थी।

चौधरी मीर सिंह ने, दूर के अपने एक खानदानी से जमीन का बदला कर लिया और वह सन् 1923 में तहसील गाजियाबाद के ग्राम भदौला में आ गये थे। चौधरी मीरसिंह के लखपत सिंह, बूटासिंह, गोपालसिंह और रघुवीर सिंह नामक चार भाई थे। चारों भाइयों में आपस में गहरा प्रेम था और वे सब सहयोग तथा आत्मीयता के धागे में बंधे थे। चौधरी लखपत सिंह का, अपने भतीजे चौधरी चरणसिंह के प्रति बड़ा लगाव था और उनकी हार्दिक कामना थी कि बालक अच्छी शिक्षा पाकर बड़ा आदमी बन जाए। चौधरी लखपत सिंह यह भी नहीं चाहते थे कि उनके भाई अलग-अलग रहें। अतः उनके आग्रह पर ही चौधरी मीरसिंह भूपगढ़ी से भदौला आकर रहने लगे थे।

यहां आकर चौधरी परिवार ने कुछ कृषि भूमि खरीदने की योजना बनाई। और कुछ बीघा भूमि खरीद ली, जिसकी कीमत इक्कीस हजार रुपये थी। लेकिन चौधरी परिवार के पास पूरी रकम देने की व्यवस्था न थी। अतः पहले सात हजार रुपये अदा किये गये और शेष रकम के लिए भूमि को गिरवी, तब तक के लिए रख दिया गया, जब तक कि पूरी रकम चुका नहीं दी जाती। भूमि पाकर चौधरी परिवार ने कठोर परिश्रम एवं मितव्ययता के साथ कृषि-कार्य किया और अल्प समय में ही बाकी की रकम चुका कर, भूमि पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया।[1]

चौधरी मीरसिंह के तीन पुत्र और दो पुत्रियां थीं। पुत्रों में सबसे बड़े थे चौधरी चरणसिंह, बीच के थे चौधरी श्यामसिंह और सबसे छोटे थे चौधारी मानसिंह। कन्याओं के नाम थे—रामदेवी और सुश्री रिसालो। चौधरी चरण सिंह का बचपन नूरपुर गांव में व्यतीत हुआ था और बाल्याकालीन समय भूपगढ़ी में। भूपगढ़ी में कोई स्कूल नहीं था, अतः बालक चरणसिंह को, समीप के एक गांव जानी के स्कूल में भर्ती करा दिया गया। खिलाड़ी तथा लड़ने-झगड़ने वाले ग्रामीण बालकों के विपरीत, बालक चरणसिंह की आदत, गम्भीर तथा अध्ययनशील

रहने की थी। जब अन्य बालक खेलते थे, तब चौधरी साहब पढ़ा करते थे। वह समय पर स्कूल जाते थे और स्कूल की छुट्टी के समय खेती के काम में, पिताजी की सहायता करते थे। उनकी गम्भीर एवं अध्ययनशील प्रकृति को देखकर, उनमें भविष्य के एक विख्यात व्यक्ति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे थे। चौधरी साहब के घर में पांच कन्याओं ने तथा एक पुत्र ने जन्म लिया है। उनकी सबसे बड़ी बेटी है सुश्री सत्या। इनका पाणिग्रहण ग्राम कागारौल, जनपद आगरा के एक छोटे से स्थान, नगला जोधना के रहने वाले श्री रत्नाकर शास्त्री, जो राजस्थान में जज थे, के पुत्र प्रोफेसर गुरुदत्त सोलंकी के साथ हुआ था। इनसे छोटी हैं सुश्रीवेद। इनके पति डा. जे. पी. सिंह हैं, जो एक समय डा. राममनोहर लोहिया अस्पताल, नई दिल्ली के चिकित्सा-अधीक्षक थे। आपकी तीसरी बेटी हैं, सुश्री ज्ञानवती। आप मेडिकल ग्रेज्युएट हैं और आपने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देकर, अपने आई. पी. एस. पति के साथ रहने के लिए जिनेवा चली गई थीं। चौथी बेटी थीं सरोज। इनका पाणिग्रहण श्री एस. पी. वर्मा के साथ हुआ था। वह उत्तर-प्रदेश शुगर-केन विभाग में अधिकारी थे। सुश्री सरोज ही छपरौली (बागपत) क्षेत्र से चुनाव जीतकर विधायक बनी थीं। पांचवी बेटी हैं, सुश्री शारदा। इनके पति हैं श्री बी. डी. सिंह। आजकल दोनों अमेरिका में रहते हैं।

चौधरी साहब के एक मात्र पुत्र हैं, चौधरी अजित सिंह। इनको प्यार से लोग 'भाई साहब' कहा करते हैं। इनका विवाह सुश्री राधिका के साथ हुआ है। इनके घर में एक पुत्र और दो कन्याओं ने जन्म लिया है। पुत्र हैं श्री जयन्त और कन्याएं हैं–सुश्री निधि एवं दीप्ति।

चौधरी साहब की प्रारम्भिक शिक्षा गांव के प्राइमरी स्कूल में, गांव के दूसरे बालकों के साथ ही हुई थी। यही कारण है कि उनको किसान-पुत्रों के स्वभाव, रुचियों और समस्याओं का अध्ययन मौलिक रूप में हो गया था। स्वाधीन भारत के अनेक नेताओं ने, साधनहीन तथा गरीब जनता की स्थिति का ज्ञान किताबों में पढ़कर किया था, पर चौधरी साहब ने, उनके अभाव तथा विषमताओं को आंखों से देखा था तथा भोगा था। यही कारण है कि आपने उनकी तरक्की तथा सुविधाओं के वायदे न करके उनकी कठिनाइयों को दूर करने के ठोस प्रयास किये थे। एक जीवनीकार की मान्यता है कि बालक चरण सिंह को 7 वर्ष की आयु में जानी खुर्द की पाठशाला में प्रवेश दिलाया गया था। वह अशिक्षित तथा साधारण किसान के घर में पैदा होकर भी जन्मजात प्रतिभाशाली बालक

थे। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि आपने दस अथवा ग्यारह वर्ष की आयु में चौथा दर्जा प्रथम श्रेणी में पास कर लिया होगा।

चौधरी मीर सिंह तथा उनके बड़े भाई की हार्दिक इच्छा थी कि बालक आगे पढ़े। इसलिए, उनको मेरठ में बुढ़ाना गेट के एक मकान में व्यक्तिगत तौर पर बालकों को पढ़ाने वाले एक शिक्षक के पास भेज दिया गया। शिक्षक महोदय, छात्रों के उज्ज्वल भविष्य के साथ प्रतिबद्ध अध्यापक थे। वह बालक चरणसिंह की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुए। वह हुक्का पीते थे और अपनी चिलम बालक चरणसिंह से भरवाया करते थे। बालक की प्रगति तथा प्रतिभा से प्रसन्न होकर उन्होंने बालक को आशीर्वाद दिया था–'तू राजा होगा।' एक दिन बातों के मध्य, चौधरी साहब ने, मुझे बताया था कि 'पंडित जी की बात पर मैं प्रायः सोचता रहता था कि मैं राजा कैसे बन सकता हूं? मुझे कौन राजा अपना युवराज बनायेगा? देश के आजाद होने के बाद तो उस आशीर्वाद का सत्य ओझल ही हो गया था। लेकिन राजनीतिक जीवन में पद पा जाने से उस विचार की कुछ सार्थकता अवश्य प्रतीत होती थी। एक बात अवश्य है कि पंडित जी के आशीर्वाद ने उनके मन में बड़ा आदमी बनने की भावना अवश्य पैदा कर दी थी। पंडित जी के शब्दों ने वही काम किया जो काम मशीन में तेल करता है। चौधरी साहब के अध्ययन की गाड़ी तेजी तथा कुशलतापूर्वक चलने लगी और आपने अच्छे अंक पाकर गवर्नमेंट स्कूल, मेरठ से हाई स्कूल परीक्षा, 1919 में उत्तीर्ण कर ली।

चौधरी साहब के माता-पिता ने अच्छी उम्र पाई थी। माता जी का स्वर्गवास 75 वर्ष की आयु में सन् 1957 में हुआ था और पिता जी का 80 वर्ष की आयु में। अपने बेटे की राजनीति के क्षेत्र में प्रगति, उच्चकोटि की ईमानदारी, कुशल प्रशासन की आदत और किसानों तथा गरीबों के भाग्य को बदल देने की प्रवृत्ति को देखकर माता-पिता ने अपने श्रम को सार्थक मान लिया था। वे दोनों, इस आत्म-तृप्ति के साथ इस संसार से विदा हुए थे कि उनके सबसे बड़े पुत्र चरण सिंह ने पितृ-ऋण की भरपाई, पूर्ण निष्ठा के साथ और पर्याप्त मात्रा में की है।

संदर्भ

1. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ द मासेज : चौधरी चरण सिंह, पृष्ठ 6-7

उच्च शिक्षा के उन्नत शिखर की ओर

हाई-स्कूल पास करते-करते बालक चरणसिंह भलीभाँति जान गया था कि मेरठ की जमीन क्रांति के शोले उगलती है। उसके सामने, विशेष रूप से, चार उदाहरण थे—पहला श्रीकृष्ण और विदुर के सहयोग से, पाण्डवों द्वारा, भारतीय अस्मिता, न्याय-आधारित प्रणाली और वैदिक संस्कृति की रक्षा-हेतु कौरव-साम्राज्य को सफल चुनौती देना, दूसरे सर्वखाप पंचायत द्वारा सन् 1297 में, अलाउद्दीन खिलजी के लोक-विरोधी शासन का वे चार प्रस्ताव पास करके चुनौती देना, जिनमें कहा गया था कि 'बढ़ा हुआ भू-राजस्व कोई नहीं चुकायेगा, बारातों पर लगे प्रतिबंध का पालन कोई नहीं करेगा, जजिया नहीं चुकाया जाना चाहिए और पंचायत को अपनी पूर्ण स्वतंत्रता कायम रखनी चाहिए और यदि दिल्ली का बादशाह इन मांगों को पूरा नहीं करता तो पंचायत को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, दिल्ली-दरबार के विरुद्ध, युद्ध करने में संकोच नहीं करना चाहिए।[1] तीसरे, 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की पूर्व वेला में, मेरठ कैन्ट की औघड़नाथ की प्याऊ पर स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा परेड से थके तथा प्यासे सिपाहियों को पानी पिलाना तथा विद्रोह की भावना भरना था और चौथे, बिजरौल के चौधरी शाहमल द्वारा बड़ौत क्षेत्र के किसानों को विद्रोही बनाना था।

देशभक्ति के इन चारों उदाहरणों ने, चौधरी साहब को देशभक्ति की भावना से भर दिया था और महर्षि दयानंद के आर्य-समाज ने समाज में वर्तमान जातीय भेदभाव के विरुद्ध, उनके मन में, गहरा विरोध पैदा कर दिया था। इस मानसिक चेतना को लेकर वह उच्च अध्ययन के लिए, आगरा कालेज, आगरा गये थे। मामूली-सी आमदनी वाले एक किसान के लिए, यह संभव न था कि बालक को आगरा पढ़ने को भेजता। यह कार्य संभव बनाया था, मेरठ के प्रख्यात डा. भोपालसिंह ने, प्रतिभाशाली बालक चरणसिंह को, दस रुपया प्रतिमाह वजीफा देकर और पूरे साल का वजीफा भी एकमुश्त प्रदान करके।[2]

सन् 1919 में, आपने आगरा कालेज, आगरा में एफ. एस-सी. में दाखिला

लिया था। इस तरह आप मेरठ की क्रांतिकारी भूमि से, देश की दूसरी क्रांतिदर्शी भूमि में पहुंच गये थे। ब्रज की समस्त भूमि क्रांति की आग उगलती है। गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में, उनका वेश बनाकर, उनकी कुटी में घुसने तथा उनकी पत्नी का शील-भंग करने वाले इन्द्र की पूजा के स्थान पर गोवर्धन की पूजा कराना, कंस एवं जरासंध के विशाल साम्राज्यों को धराशायी करके 18 जातियों का एक संघ बनाकर लोकतंत्रीय शासन-प्रणाली का प्रवर्तन करना और अन्याय तथा अनीति पर आधारित कौरव-साम्राज्य का अंत करा देना श्रीकृष्ण के महान् क्रांतिकारी कार्य थे। इसका प्रभाव, इंटर के छात्र चरणसिंह पर पड़ा था।

इसके अलावा, मुगल-सम्राट अकबर, जिसके सामने देश के राजा नत-मस्तक हो गये थे और अपनी बेटियां देकर वैवाहिक सम्बंध स्थापित कर रहे थे, उसी महान् शक्तिशाली मुगल-सम्राट अकबर को, आगरा-मण्डल के किसानों ने, उसके नील की खेती कराने वाले इजारेदारी के आदेश को सफल चुनौती दी थी। किसानों ने अपने खेतों से नील के पौधे उखाड़ कर फेंक दिये थे। किसानों के इस विद्रोह को दबाने के लिए स्वयं अकबर को जाना पड़ा था, पर किसान काबू में नहीं आये। अकबर ने अपना आदेश वापस ले लिया।[3] जहांगीर ने भी जाट-किसानों को कुचलने के लिए दो बार फौजें भेजी थीं, पर बेकार रहीं।[4]

इसी तरह सन् 1665 में तिलपत गांव के जाट किसान गोकुला ने, बीस हजार किसानों की सेना लेकर, औरंगजेब के कुशासन तथा धार्मिक संकीर्णता वाले राज्य को चुनौती दी थी। अधिकांश किसान मारे गये। उनकी महिलाओं ने कुओं तथा तालाबों में कूद कर प्राणों की बलि दी और अपने सतीत्व की रक्षा की थी। जागरूक बालक चरणसिंह का मन, किसानों की इस दुःखद घटना पर दुःखी हुआ था, पर दूसरी घटना पर खुशियों से उछल पड़ा था। वह घटना थी सिनसिनी के एक अन्य किसान राजाराम द्वारा औरंगजेब के तीन जनरलों को पीट कर क्षेत्र में क्रांति की लहर पैदा कर देने की।[5] आपने यह भी जाना कि राजाराम के स्वर्गवास के बाद चूरामन ने अपनी राजनीतिक सूझबूझ द्वारा गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली से मुगल-सम्राट तथा उनके सेनापति आमेर के राजा को छका कर, मुगल-सल्तनत से राजा का खिताब पाया था और एक सीमा तक, क्षेत्र से मुगल-फौजदारों तथा सामंतों के शोषण का अंत कर दिया था।[6]

आगरा-मथुरा की इस क्रांतिकारी भावना को लेकर बालक चरण सिंह, विज्ञान के विषयों में सन् 1921 में इण्टर पास करके गांव वापस आ गये थे। उनके सामने, अब भारत के किसानों की गरीबी, साधनहीनता, जमींदारों का शोषण,

राजा-महाराजाओं का वैभव तथा विलासिता पूरी तरह उभर कर आ गयी थी और वह अंग्रेजी-राज्य की जन-विरोधी तस्वीर को भी समझने लगे थे, लेकिन इसका अंत कैसे हो? इसका हल अभी उभर कर उनके सामने न आ सका था। उन दिनों आर्य-समाज की जातीय एकता, धार्मिक आडम्बर-विरोधी चेतना और देशभक्ति की दृष्टि उनको अधिक प्रभावित करने लगी थी। इस तरह, उनका दिमाग सामान्य बालकों के विपरीत, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं की ओर अधिक अग्रसर होने लगा था।

सन् 1919 तथा 1920 में देश के राजनीतिक क्षितिज पर, दो घटनाएं ऐसी घट गयीं थीं, जिन्होंने देश के अधिकांश जागरूक बालक तथा युवकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। पहली घटना थी खिलाफत आन्दोलन की और दूसरी थी रोलट एक्ट पास होने की। पहली घटना के जनक थे मोहम्मद अली तथा शौकत अली। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद, विजयी अंग्रेजों ने तुर्की के साथ अन्याय किया था। उसी के विरोध में, यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था, जिसमें जागरूक भारतीय नेता तथा जनता ने भी भाग लिया था और दूसरी घटना थी, रोलट एक्ट पास होने की। दोनों घटनाओं ने देश में अंग्रेज-विरोधी वातावरण पैदा किया था। आगरा कालेज, आगरा के सजग छात्र, अंग्रेज-विरोधी कार्यों में भाग लेते थे। बालक चरणसिंह ने इन आन्दोलनों में भाग तो नहीं लिया, पर उनके भीतर देशभक्ति की ज्वाला जलने लग गयी थी। सन् 1920 में, गांधीजी भी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर चुके थे, जिसका प्रभाव पूरे देश पर पड़ रहा था। इस आन्दोलन का एक भाग अंग्रेजी-शिक्षा का त्याग करना भी था। अतः अनेक लोग, अध्ययन छोड़कर असहयोग-आन्दोलन में शामिल हो गये थे। बालक चरण सिंह की भी इच्छा हुई थी कि अंग्रेजों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा का बहिष्कार किया जाए, लेकिन मेरठ के डा. भोपाल सिंह और प्रख्यात गांधीवादी पंडित प्यारेलाल शर्मा द्वारा, यह समझाने पर कि पहले उच्च शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और उसके बाद राजनीति में भाग लेने की बात सोची जाये। फलतः बालक चरणसिंह ने दोनों के परामर्श को स्वीकार कर लिया और निश्चय किया कि बी. एस-सी करने के लिए वापस आगरा कालेज चले जायेंगे। इस पर, डा. भोपाल सिंह ने, उनका वजीफा दस रुपये के स्थान पर बीस रुपये कर दिया और प्यारेलाल शर्मा, जो बाद में उत्तर-प्रदेश में शिक्षा-मंत्री बने थे, ने उनको आशीर्वाद दिया।

मेरठ के दो प्रख्यात बुजुर्गों का आशीर्वाद लेकर आपने बी. एस-सी. प्रथम

वर्ष में, आगरा कालेज, आगरा में दाखिला ले लिया। बी. एस-सी. फाइनल में पढ़ते समय, आपने रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज की प्रवेश-परीक्षा में भाग लिया। उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की सूची में आपका स्थान उनतीसवां था। लेकिन ड्राइंग में अधिक अंक न पाने के कारण, आपका प्रवेश न हो पाया। इस विफलता से आप हताश नहीं हुए, वरन् दुगुनी मेहनत से अध्ययन में लग गये। बी. एस-सी. पास करने के बाद, आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम. ए. (अर्थशास्त्र) करने का प्रयास किया, लेकिन एम. ए. (अर्थशास्त्र) में लखनउ विश्वविद्यालय के छात्रों की ही अधिक संख्या होने के कारण, बाहर से आने वाले छात्रों का प्रवेश न हो सका। फलतः आपको पुनः आगरा कालेज, आगरा आना पड़ा और यहां इतिहास विषय में प्रवेश ले लिया था। साथ ही, कानून की एल. एल. बी. कक्षाओं में पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन परीक्षा पूर्ण होने से पहले ही, उनके सामने एक विशेष दुःखद घटना प्रस्तुत हो गयी। इनके ताऊजी, श्री लखपत सिंह का स्वर्गवास हो गया। स्वर्गीय ताऊ जी बालक चरण सिंह से गहरा स्नेह करते थे। इनके विकास तथा उत्कर्ष के लिए तन-मन तथा धन से समर्पित थे। अस्तु, चौधरी साहब के लिए उनके जीवित रहने का बड़ा महत्त्व था। यह सौभाग्य उनसे छिन गया और इसका इतना गहरा प्रभाव उनके मानस पर पड़ा कि वह केवल इतिहास की ही तैयारी कर पाये, एल. एल. बी. की तैयारी नहीं हो पाई। अतः एम. ए. द्वितीय वर्ष के साथ एल. एल. बी. प्रथम वर्ष की परीक्षा पास की। एल. एल. बी. अंतिम वर्ष की परीक्षा आपको मेरठ कालेज, मेरठ से 1925 में पास करनी पड़ी और इस परीक्षा में उनको प्रथम श्रेणी मिली। यही वह समय है जब आपने लेखन-कार्य का प्रारम्भ किया था। एल. एल. बी. अंतिम वर्ष के अध्ययन-काल में आप, मेरठ के स्काऊट-आश्रम के भवन में रहते थे। आश्रम के अधीक्षक पं. तेजराम शर्मा थे। आश्रम की एक पत्रिका निकलती थी। यही पत्रिका, चौधरी साहब के प्रारम्भिक लेखन-कार्य का माध्यम बनी।

यथार्थ में, स्वर्गीय चौधरी साहब का बौद्धिक उत्कर्ष और राष्ट्रीय चरित्र का विकास, आगरा में छह वर्षों के निवास के दौरान हुआ था, जहां वह अध्ययन के लिए गये थे। इसके दो विशेष कारण थे—पहले देश में उत्पन्न राष्ट्रीयता की भावना और दूसरा आगरा का राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक परिवेश। अभी तक 1857 के प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन की चिंगारियां पूरी तरह बुझ नहीं पाई थीं कि लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके उनको और सुलगा दिया था। परिणामस्वरूप पूरे बंगाल में स्वदेशी वस्तु-प्रयोग का आन्दोलन जोर पकड़ गया

था। इसका प्रभाव देश के अन्य क्षेत्रों में भी फैला। सन् 1906 में, कलकत्ता में राष्ट्रीय नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। वहां से राजा महेन्द्र प्रताप स्वदेशी का व्रत लेकर आये थे और मुड़सान आकर उन्होंने अपने समस्त विदेशी वस्त्रों की होली जलाई थी। इसकी गूंज पूरे ब्रज-क्षेत्र में फैल गयी थी। देश में फैलती राष्ट्रीय भावना और क्रांतिकारी चेतना को दबाने के लिए 1919 में रोलट एक्ट पास किया गया, जिसका व्यापक विरोध हुआ। 13 अप्रैल 1919 को जलियांवाला बाग का हत्याकांड हो गया था, सारा देश, अंग्रेजों के प्रति घृणा से भर गया। बालक भगत सिंह जलियांवाला बाग गया। वहां की मिट्टी लाया, उसको पूजता रहा। उधम सिंह ने, जलियांवाला बाग के हत्यारे से बदला लेने की शपथ ली। खिलाफत आन्दोलन से अंग्रेज-विरोधी आन्दोलन में अधिक गर्मी आ गयी थी। गांधीजी भी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर चुके थे। अंग्रेजों के विरोध में व्यापक आन्दोलन होने लग गये थे। 5 फरवरी 1922 को, गोरखपुर के एक गांव चोरीचौरा में कांग्रेस के एक जुलूस के समय उत्तेजित भीड़ ने थाने में आग लगा दी। फलतः एक दरोगा तथा इक्कीस सिपाही जल गये। इसी तरह के कांड 17 नवम्बर 1921 को बम्बई तथा 13 जनवरी 1922 को मद्रास में हुए। ये काण्ड, अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय जनता के उमड़ते क्रोध के ज्वलंत उदाहरण थे।

इन घटनाओं के अलावा 'गदर-पार्टी' के शहीदों पर चलाये जाने वाले मुकदमों की चर्चा देश में व्याप्त थी। 'गदर पार्टी' के नेता करतार सिंह 'सरावा' को जब अंग्रेज जज ने फांसी का हुक्म सुनाया, तब 'करतार सिंह' सरावा ने 'थैंक्यू' कहा था। उनके एक दूसरे साथी ने, जज से प्रार्थना की थी कि वह मुझे भी फांसी की सजा दें। इन बातों को, देश भर के लोग दुहराया करते थे और एक प्रकार का गर्व महसूस किया करते थे। आगरा कालेज, आगरा के लॉन पर बैठे छात्र क्रांतिकारियों के किस्से सुनते तथा सुनाते थे। छात्र चौधरी चरण सिंह ने भी निश्चय ही छात्रों की टोलियों में, उन देशभक्तिपूर्ण बातों से गर्व का अनुभव किया और उनके भीतर देशभक्ति का ज्वार उमड़ने लगा था।

समूचा बंगाल, पंजाब और बाल गंगाधर तिलक का महाराष्ट्र राष्ट्रभक्ति की लहरों में झूम रहा था। आगरा शहर भी, इन लहरों से अछूता न था। माता पार्वती, सेठ अचल सिंह और श्री कृष्णदत्त पालीवाल आदि कांग्रेसी नेताओं के अतिरिक्त, इस नगर में क्रांतिकारी दल के सदस्यों का भी अभाव न था। अपने छह वर्ष के अध्ययन काल में, चौधरी साहब आगरा नगर की क्रांतिकारी चेतना

से अप्रभावित न रह सके थे। इसका एक विशेष कारण और भी है। आगरा कालेज, आगरा के भवनों के ठीक सामने, सड़क की दूसरी ओर कालेज के छात्रावास हैं। फर्स्ट-हाउस नामक छात्रावास की एक दीवाल उस पुरानी दीवाल का अवशेष है, जो गोकुलपुरा (आगरा) की एक बस्ती की चहारदीवारी थी और जिसे अंग्रेजों ने तोप के गोलों से गिरा दिया था। अंग्रेज कलक्टर के आदेश पर, जिस समय यह दीवाल गिराई जा रही थी, तब एक दिन उसी कलक्टर ने सड़क से जाते समय, एक कलाकार को देखा और उससे पूछा, 'क्या तुम हमारी तस्वीर बना सकते हो?' उत्तर हां में मिला और कल देने का वायदा किया गया था। दूसरे दिन, कलक्टर ने तसवीर देखी और मुग्ध होकर पूछा, 'तुम क्या मांगता है?' कलाकार ने कहा, 'तुम यह दीवाल गिरवा रहे हो इसे बंद करा दो। जंगली जानवरों तथा चोरों से यह हमारी जनता की रक्षा करती है।' कलक्टर का उत्तर था—'यह नहीं हो सकता।' इस पर कलाकार ने कहा, 'तो यह तसवीर तुमको नहीं मिल सकती ओर उसने तसवीर फाड़ कर फेंक दी।'[7] कलाकार की इस देशभक्ति, साहस तथा निर्भीकता पर आगरा की जनता को गर्व था। अन्य बालकों से कहीं अधिक चौधरी साहब इस घटना से प्रभावित थे। इसी कालेज का एक दूसरा छात्रावास है 'थॉमसन'। इसके पीछे श्रीराम का एक मंदिर है। इसी में, साधुवेश बनाकर नाना साहब वर्षों रहे थे। इसी के पास, सुन्दर होटल है। इसके ऊपर बने कमरों में आजाद, भगत सिंह आदि क्रांतिकारी ठहरते थे। शिव वर्मा नूरी दरवाजे के एक मंदिर में क्रांतिकारी साथियों के साथ रहते थे। यथार्थ में, आगरा क्रांतिकारी भावना का केन्द्र था और यह भावना वहां के छात्रों में देशभक्ति का भाव भरा करती थी। चौधरी साहब, यहां की देशभक्ति के परिवेश में पूर्णतः डूब कर सच्चे देशभक्त बन गये थे। विशेष बात यह है कि उनकी देशभक्ति, यथार्थ में देशभक्ति थी, अपने स्वार्थों की पूर्ति करने वाला दिखावा न था। आज के अनेक राजनीतिक नेता देशभक्ति के नारे लगाते हैं, देशहित के उपदेश करते हैं, देश के भले के लिए सर्वस्व त्यागने की बात करते हैं, लेकिन उनके कार्यो के पीछे उद्देश्य होता है, केवल अपने तथा परिवार के लिए अपार दौलत इकट्ठी कर लेना। इनके कथन और कर्म में अंतर होता है। चौधरी साहब की देशभक्ति ऐसी नहीं थी। आपने असत्य, बुराई और देश-विरोधी कार्यों के साथ, कभी समझौता नहीं किया। संभवतः वह पहले व्यक्ति हैं, जिसने लोकहित, सुशासन और देशभक्ति के प्रश्न पर, उत्तर-प्रदेश में मंत्रिमंडल से, कई बार त्याग-पत्र दिया था और वह निश्चित रूप से, ऐसे प्रथम प्रधानमंत्री थे, जिसने केन्द्र में

अपनी सरकार बचाने के लिए, किसी दल के साथ गठजोड़ नहीं किया। वह जानते थे कि विरोधी दलों के साथ गठ-बंधन करके सरकार चलाने का तात्पर्य है, अवसरवादी एवं सिद्धांतविहीन लोगों के हाथों में खेलना तथा देश की जनता का हित न करके, व्यक्ति विशेषों का हित करना। उनकी दृष्टि में, राजनीतिक सत्ता पर अधिकार का तात्पर्य था, जन-समस्याओं का जन-हितकारी समाधान। वह सत्ता और जन-हित को, एक-दूसरे का पर्याय मानते थे। उनके सामने कई बार ऐसे मौके आये कि उन्होंने सत्ता छोड़ दी, लोकहित नहीं छोड़ा। यही कारण है कि वह भारतीय राजनीति में सुशासन, लोकहित, ईमानदारी और दृढ़निश्चय का पर्याय बनकर उभर सके थे। यही कारण है कि उनका बड़े से बड़ा राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी भी उन पर परिवारवाद तथा भ्रष्टाचार का आरोप नहीं लगा सका था। पंडित नेहरू तथा कुछ अन्य लोगों ने, भ्रांतिवश, जातिवादिता का आरोप लगाया था, पर वे स्वयं आरोप को सत्य प्रमाणित नहीं कर पाये, वरन् 'जातिवादी कौन' नामक पुस्तक के लेखक ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि चौधरी साहब पर जातिवादिता का आरोप लगाने वाले लोग, स्वयं इस आरोप से बच नहीं सके हैं।[8]

आगरा का वातावरण एक ओर राष्ट्रीय भावना से भरा था, तो दूसरी ओर ब्रज की धार्मिक भावना से भी परिपूर्ण था। वहां आये दिन मेले लगते थे, सावन, फाल्गुन एवं चैत के माह भी मेलों की गूंज से भरे रहते थे। चौधरी साहब का मस्तिष्क आर्य-समाज के दर्शन से प्रभावित हो चुका था। वह धर्म को विश्वास एवं आस्था के साथ आचरण का विषय मानते थे। केवल कथन तथा उपदेश को वह धर्म का रूप मानने के लिए तैयार न थे। हिन्दू-धर्म में वर्तमान जातीय भेदभाव को वह वैदिक संस्कृति का विरोधी स्वीकार करते थे। उनको सवर्ण तथा शूद्र का अन्तर, देश की सामाजिक शक्ति तथा समष्टिमूलक संस्कृति का विरोधी प्रतीत होता था। इस प्रश्न को लेकर, कई साथियों के साथ, उनकी बहस हो जाया करती थी। एक दिन, बहस के दौरान, एक साथी ने उनसे पूछा, 'क्या तुम किसी शूद्र के हाथ का स्पर्श किया भोजन कर सकते हो?' आपका उत्तर था, 'ब्राह्मण और शूद्र में कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों को समान मानता हूं।' आपने यह भी कहा कि प्रश्न केवल स्वच्छता का है। ब्राह्मण द्वारा गंदे हाथों से लाया गया भोजन मेरे लिए ग्राह्य नहीं है और शुद्ध एवं स्वच्छ हाथों से, शूद्र कहे जाने वाले द्वारा लाया गया भोजन, ग्राह्य है। अपने कथन के समर्थन में, आपने मैस के जमादार द्वारा स्वच्छ हाथों से लाये भोजन को ग्रहण करके

अपने कथन तथा कर्म की एकता का परिचय दे दिया। छात्रों पर उनके विचारों का प्रभाव पड़ा। आगे चलकर, राजनीतिक उत्कर्ष के युग में, चौधरी साहब का रसोइया प्रायः अस्पृश्य कही जाने वाली जाति का व्यक्ति हुआ करता था। वह जातीय एकता के प्रबल पक्षधर थे। भारत में व्याप्त जातीय भेदभाव को मिटाने के लिए आपने एक सार्थक साधन रूप में, पूर्व प्रधानमंत्री पं. नेहरू को, एक सुझाव दिया था कि प्रशासनिक सेवाओं में चयनित अविवाहित युवकों के लिए हरिजन जातियों की कन्याओं के साथ विवाह करना अनिवार्य कर दिया जाए। लेकिन पंडित नेहरू ने, इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर एक प्रतिबंध मानकर, अस्वीकार कर दिया था। यदि, उनका प्रस्ताव मान लिया गया होता तो न तो आरक्षण का जटिल प्रश्न खड़ा होता और न जातीय भेदभाव की खाई भारतीय राजनीति की जड़ें खोखली करती। यथार्थ में, स्वर्गीय चौधरी साहब व्यावहारिक नेता थे, कल्पना के महल सजाने वाले नेता नहीं। वह आचरण के पक्के तथा दृढ़ व्यक्ति थे, स्वप्नदर्शी विचारक नहीं।

अपने आगरा कालीन छात्र-जीवन से उन्हें धर्म के आडम्बरों से विरोध हो गया था। इतिहास के अध्ययन और वर्तमान समाज की जातीय भेदभाव से भरी नीति के अवलोकन से आप इस नतीजे पर पहुंच गये थे कि भारत तथा संसार के अन्य देशों में धर्म के नाम पर, मानव का बड़ा भारी शोषण किया गया है। यही कारण था कि वह धर्म के आडम्बरों से हमेशा दूर रहे और धर्म के सच्चे रूप को सदैव अपनाते रहे। धर्म के बारे में, वह महाभारत की इस मान्यता से सहमत थे—'सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषं यो हिते रतः'[9] अर्थात् हे जाजले! मन, वचन तथा कर्म से जो मनुष्य सबका मित्र है और जो नित्य सब के हित में निरत रहता है, वही धर्म को जानता है। फलतः वह भी धर्म को सेवा का मार्ग, अन्तःकरण की पवित्रता का साधन और इंसान के चरित्र के उत्थान की दिशा मानते थे। उनको ज्ञात था कि कठोपनिषद् में यम और यमी के संवाद में धर्म का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। इसके अनुसार 'श्रेयस धर्म है और प्रेयस अधर्म।' तात्पर्य यह है कि मानव-कल्याण का रास्ता धर्म है और समस्त साधन तथा सम्पत्ति का भोग करने का इरादा या कार्य पाप है। आप, धर्म के स्वरूप के विषय में, स्कन्ध-पुराण की इस मान्यता से सहमत थे कि क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, अनुचित आग्रह, दम्भ और उद्वेग का त्याग ही सच्चा धर्म है।[10] वह, यह भी मानते थे कि 'मन पर विजय ही सबसे बड़ा धर्म एवं योग है। गीता की इस मान्यता को, चौधरी साहब, सदैव अपने कर्म का

आधार मानते थे। इसके अनुसार आचरण करना, उनकी विशेषता थी।

चौधरी साहब, बाल्मीकि रामायण के इस कथन से भी सहमत थे कि 'चरित्र ही धर्म है और इस कारण चरित्रवान राम धर्म के मूर्त रूप हैं–'रामो विग्रहवान धर्मः'[11] चौधरी साहब, आगरा के अध्ययन-काल से ही मानने लग गये थे कि धर्म आचरण का विषय है, आख्यान का नहीं। वह यह भी स्वीकार करते थे कि धर्म का भाव, हमें दूसरों के विषय में सोचने के लिए प्रेरित करता है। वह, मानव की इच्छाओं को कम करने की प्रेरणा भी देता है। वह यह भी मानते थे कि धर्म का तात्पर्य मानव के बाहरी आचरण को इस प्रकार संयमित करना है कि वह समस्त बुराइयों से मुक्त हो जाए और उसके भीतर छिपा देवता, समाज-हित की दिशा में, सक्रिय हो जाए। अर्थ, काम, सत्ता के आकर्षण और यश से मुक्त होकर ही आदमी प्राणियों के हितों के साथ संलग्न होता है, ऐसी उनकी धारणा बन गयी थी। धारणा ही नहीं, यह विचार उनके कर्म के स्तर पर भी सक्रिय था। उत्तर-प्रदेश के मंत्रिमंडलों में संसदीय सचिव से लेकर, विभागों के मंत्री तक के उनके कार्य, इस धारणा के प्रतीक हैं।

इतिहास के गंभीर अध्ययन से, चौधरी साहब यह जान गये थे कि इस देश में एक ऐसा समय था, जब सब लोग एक कुटुम्ब के समान थे, उनमें न वर्णभेद था, न जातिभेद और न ऊंच-नीच का अन्तर था। फिर उस देश में धर्म, जाति और ऊंच तथा नीच का अन्तर कैसे पैदा हो गया? आपको इस प्रश्न का उत्तर मिला, ऋषि वशिष्ठ के आख्यान में। डा. दामोदर धर्मानन्द कौसाम्बी की मान्यता है कि 'वशिष्ठ किसी आर्य-पूर्व मातृदेवी के मानवीय प्रतिनिधियों की संतान थे, और इसलिए उनके कोई पिता नहीं थे।'[12] अज्ञात पिता की संतान वशिष्ठ, ब्राहमण वर्ग की समाज में प्रतिष्ठा श्रद्धा और महत्ता को देखकर ब्राह्मण बन गये और पहाड़ी प्रदेश का निवास छोड़कर मैदानी भाग में आ गये थे। सूर्यकान्त बाली मानते हैं कि हिमालय से चलकर वशिष्ठ अयोध्या आये थे।[13] यथार्थ में अयोध्या आने से पहले, वशिष्ठ अन्य राजाओं के यहां पुरोहित रहे थे। इसका प्रमाण, 'बुद्ध पूर्व भारतीय इतिहास' में मिलता है। वशिष्ठ की तपोभूमि को हैहयार्जुन ने जला दिया था।[14] फलतः वह पांचाल नरेश सुदास, फिर पौरव राजा संवरण, फिर दक्षिण कौशल नरेश कल्याषपाद और तत्पश्चात् अयोध्या आये थे।[15] पौराणिक विवरणों से अनुमान लगता है कि वशिष्ठ का मूल उद्देश्य किसी समर्थ राजा का पुरोहित बना रहना था, ताकि दक्षिणा में प्रचुर सम्पदा मिलती रहे। अपनी योजना में, वह सफल भी हुए। दासराज-युद्ध में विजय के बाद,

पराजित राजाओं की लूटी गयी सम्पत्ति में से एक बड़ा भाग वशिष्ठ को भी मिला था। इसी उपलक्ष्य में वशिष्ठ ने, सुदास की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्तियों का गायन किया था। यही कारण है कि 'पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात सुदास के नौकर कहे गये हैं।[16] कौसाम्बी भी स्वीकार करते हैं–'दस राजाओं पर विजय का गुणगान करने वाले पुरोहित-ऋषि का कुलनाम वशिष्ठ (सर्वश्रेष्ठ) है।' कौसम्बी आर्य ऋषियों में विश्वामित्र को स्थान देते हैं–'आठवें ऋषि विश्वामित्र ही सही मायने में आर्य थे।'[17]

निश्चय ही, चौधरी साहब को, यह पढ़कर आश्चर्य हुआ होगा कि गायत्री मंत्र के रचयिता और आर्य ऋषि विश्वामित्र को, वशिष्ठ आदि तथाकथित ब्राह्मण ऋषियों ने, सप्तऋषियों में स्थान नहीं मिलने दिया। यही नहीं, सागर पार कराने का मार्ग बताने तथा देवताओं के शत्रु 'कालेय' नामक असुरों का संहार करने में देवताओं को सफल बनाने वाले ऋषि अगस्त्य को भी सप्तऋषियों में स्थान नहीं मिलने दिया। यही बात कवष ऐलूष के विषय में सार्थक है। यह ऋषि, सरस्वती के तट पर होने वाले यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए गया था, पर याश्रिक-ब्राह्मणों ने, उसको यज्ञ में शामिल नहीं होने दिया और उसको खिंचवा कर धन्वा (जलरहित क्षेत्र) में डलवा दिया। सम्भवतः यह इसलिए किया गया होगा कि यज्ञ में मिलने वाली दक्षिणा में वह भागीदार न बन सके। दक्षिणा में प्रचुर धन पाना याश्रिक ब्राह्मण पुरोहित की सबसे बड़ी कमजोरी थी। इसी चारित्रिक दुर्बलता का एक उदाहरण ऋग्वेद के तीसरे मण्डल की कथा में मिलता है। वह बताती है कि विवामित्र की वाक्-शक्ति को समाप्त करने के लिए, वशिष्ठ-पुत्र शक्ति ने कोई ऐसा पदार्थ खिला दिया था, जिससे उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई, तब जमदग्नि नामक ऋषि ने उनको वाणी प्रदान की थी।[18] याश्रिक ऋषि ऐसा जघन्य कार्य केवल अधिक दक्षिणा के लिए करता था। उन दिनों, दक्षिणा में 'अनगिनत हाथी, मवेशी, रथ, सुन्दर दासियां और बहुत-सा स्वर्ण' मिला करता था। यही नहीं ऊंट, भैंस और स्वर्ण जड़ित सींगो वाली हजारों की संख्या में गायें भी दक्षिणा में मिलने के संदर्भ मिलते हैं। कौसाम्बी मानते हैं कि 'इस नयी-तापस-चर्चा का स्वयं ब्राह्मणवृत्ति पर जो गहरा प्रभाव पड़ा, उसकी छाया अमिट रही।'[19]

इसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि जो ब्राह्मण वर्ग ज्ञान, अध्यात्म और ब्रह्म के स्वरूप विषयक शोध के लिए समाज में आदर तथा श्रद्धा के साथ देखा जाता था, उसके खेमे में गैर-ब्राह्मण ने प्रवेश करके, पहले तो स्वयं को वशिष्ठ

अर्थात् ऋषियों में श्रेष्ठ कहलाया। फिर ब्रह्म ऋषि और राजऋषि का अन्तर पैदा करके ज्ञान के सम्मान की उपेक्षा की। यही नहीं, दक्षिणा के लोभ में राजाओं के प्रशस्ति गायन किये। उनको युद्धों के लिए उत्साहित किया। उनसे यज्ञ कराये गये ताकि प्रचुर मात्रा में सम्पत्ति मिल जाए और फिर ब्राह्मण तथा गैर-ब्राह्मण की खाई खोद कर, ब्रह्म की साधना और अध्ययन में संलग्न ब्राह्मण वर्ग को, उसके गरिमामय तथा लोक-कल्याणकारी कार्य से पराङ्मुख करके उसको भी सत्ता तथा संपदा का लालची बना दिया। इसी स्थिति को देखकर कोसम्बी ने लिखा है–'जाति-भेद और ब्राह्मणों की धूर्तता ने देश को अंध-विश्वास के दलदल में फंसाये रखा और इस प्रकार विदेशी आक्रमणों के सामने देश असहाय बना रहा।'[20] डा. कौसम्बी यह भी कहते कि ब्राह्मण-पुरोहित आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक स्वामी की सेवा करने के लिए तत्पर रहता था। फिर वह स्वामी आर्य हो या अन्य कोई।'[21] इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण पुरोहित वर्ग द्वारा प्रोत्साहित एवं समर्थित ईर्ष्या, द्वेष, आडम्बर और संघर्षो का परिणाम हुआ देश की सैनिक शक्ति का ह्रास, जातीय एकता का विघटन और वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति का विनाश। चौधरी साहब को, भारत की उस सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था, जो कहती है–'सं गच्छध्वं, सवदुध्वं सं वो मनांसि जानताम। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते[22] अर्थात् हे मनुष्यो! तुम समष्टि भावना के साथ, अविरोध भाव से, उसी प्रकार आचरण करो, जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र, अग्नि एवं वायु आदि देव अनंतकाल से, अविरोध भाव के साथ, अपना कार्य करते आ रहे हैं। यही बात, अथर्वेद भी इसी प्रकार के शब्दों में कहता है–'सहृदयं सामनस्यम विद्वेषं कृणोमि वः, अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवा धन्या'[23] अर्थात् हे मनुष्यो! तुम आपस में प्रेम, तथा स्नेह के साथ आचरण करो, जिस प्रकार गाय अपने सद्यजात वत्स से करती है। इसका निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कृति की मूल भावना अविरोधी, एकतामूलक एवं समष्टि चेतना पर आधारित है। लेकिन गैर-ब्राह्मण से ब्राह्मण बने ऋषि पुरोहितों ने, विपुल स्वर्ण दक्षिणा के प्रलोभन में, भारत की उस सांस्कृतिक अस्तिमता को खंडित कर दिया, जिस पर हम भारतीय पराधीनता के युग में भी गर्व करते थे और आज भी करते हैं।

जिस प्रकार हमारी प्राचीन संस्कृति लोकहितमूलक श्रेष्ठ कर्म पर आधारित थी, उसी तरह हमारा अर्थात् हिन्दू धर्म पावन कर्म एवं शुद्ध आचरण पर आधारित था। बाल्मीकि रामायण भी चरित्र की पावनता को धर्म का पर्याय मानती है। उसके अनुसार–चरित्र ही धर्म है और इस कारण चरित्रवान राम धर्म के मूर्त

रूप हैं–'रामो विग्रहवान् धर्म।'[24] बाल्मीकि रामायण में एक प्रसंग आया है कि राम द्वारा राज्य त्याग को, कुछ लोग, उनकी भीरुता का प्रतीक मानते हैं। इस पर राम का उत्तर है–'धर्मबन्धन बद्धोऽस्मि'[25] अर्थात् मैं अकेला ही इस अयोध्या तथा सारी पृथ्वी को अपने वाणों से नष्ट करके अभिषेक करा सकता हूं, लेकिन अधर्म से डरता हूं। क्योंकि मैं धर्म के बंधन से बंधा हूं। अतः लोभ, मोह, अज्ञान या किसी अन्य प्रवृत्ति से सत्य के सेतु को नहीं तोड़ूंगा। धर्म और सत्य जीवन के सबसे कीमती कोश हैं। यहां एक प्रश्न किया जा सकता है कि इस देश का पुरोहित और मंदिरों की संपत्ति पर कुण्डली मार कर बैठा पुजारी क्या धर्म और सत्य के मार्ग पर थे या हैं? ऐसे ढोंग और धर्माडम्बर पर आधारित कर्मकाण्ड, जिसे लोगों ने धर्म का नाम दिया था, ऐसे धर्म से, चौधरी साहब को, विशेष तथा अरुचि थी। चौधरी साहब को जिस प्रकार दो-मुहे राजनीतिक नेताओं के प्रति अरुचि थी, उसी प्रकार ध्रर्म के नाम पर ठगी करने वाले पुरोहित, पुजारी तथा मठाधीशों से विरोध था। उत्तर-प्रदेश के एक कांग्रेसी मुख्यमंत्री समाजवाद पर सैद्धांतिक लेख लिखते थे, पर उत्पादन-मूल्य से कम दामों पर बिजली उद्योगपति की एक फैक्ट्री को देते थे, गरीब किसान, मजदूर तथा दुकानदारों को नहीं। इसी तरह एक अन्य मुख्यमंत्री, कांग्रेस-दल के लिए पैसा उद्योगपतियों से लेकर, कांग्रेस-दल की गतिविधियों को जनता के हितों से हटाकर, उद्योगपतियों की झोली में डाल रहे थे। ऐसे मुख्यमंत्रियों के मंत्र-मण्डलों में रहते हुए भी चौधरी साहब ने उनकी नीतियों का विरोध करने और आवश्यक हुआ तो मंत्रि-मण्डल से त्याग-पत्र देने का साहस प्रदर्शित किया है, जिसका लेशमात्र अस्तित्व आजकल की राजनीति में दिखाई नहीं पड़ता है। अस्तु, उनको भारतीय राजनीति में अनुपमेय नेता कहा जा सकता है।

धार्मिक आस्था के क्षेत्र में भी स्वर्गीय चौधरी साहब की स्थिति यही थी। उनके केन्द्र में गृह-मंत्रित्व काल में, स्व. राजनारायण तथा अन्यों ने वृंदावन के एक पागल बाबा का आशीर्वाद पाने की योजना बनाई थी। वह बाबा एक मचान पर बैठता था, जो व्यक्ति उससे आशीर्वाद लेने आता था, वह उसके सिर पर पैर रख देता था। कई मंत्री वहां जाने को सहमत हो गये थे, लेकिन जब चौधरी साहब से सम्पर्क किया गया, तो उनका उत्तर नकारात्मक था। यह थी, उनकी धार्मिक आस्था। वह धर्म को, अन्तःकरण की पवित्रता का प्रतीक और श्रेष्ठ कर्म का पर्याय मानते थे। वह, गंगा को पावन मानते थे, लेकिन पुष्प तथा पूजा की अन्य सामग्री, गंगा के प्रवाह में फेंक कर, उसके पावन जल को प्रदूषित

करने के पक्षधर न थे। वह मंदिर तथा मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी धर्म-विरोधी मानते थे। मंदिरों में भ्रष्टाचार था और है, आज भी है इसके दो प्रमाण हैं–'टाइम्स ऑफ इंडिया', दिनांक 20 फरवरी, 2000 पृष्ठ 6 पर वृंदावन में बसी महिलाओं की स्थिति पर प्रकाशित एक रिपोर्ट, जो उत्तर-प्रदेश के सोशल वैलफेयर बोर्ड द्वारा सरकार को प्रस्तुत की गयी थी और दूसरा है, पूर्वी दिल्ली के एक मंदिर के भ्रष्टाचार पर, जांच कमेटी के एडवोकेट्स की रिपोर्ट, जो 15-11-2000 के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के पृष्ठ 5 पर प्रकाशित हुई थी। दोनों रिपोर्टों का निष्कर्ष है कि दोनों स्थानों पर धर्म की आढ़ में भयंकर भ्रष्टाचार तथा दुराचरण होता है। दुराचार के ऐसे केन्द्रों को, चौधरी साहब जैसा निष्ठावान तथा निष्कलंक चरित्र का व्यक्ति, धर्म-स्थल मानने के लिए तैयार न था।

जिस मंदिर का सिद्धांत यह हो कि जो जितने अधिक रुपये देगा, वह उतनी जल्दी ही, देवता के दर्शन कर सकेगा, ऐसा देवस्थल धर्म का केन्द्र नहीं हो सकता। स्व. चौधरी साहब का विश्वास ऐसा ही था। द्वारिका के मंदिर के पोर्ट पर राजा महेन्द्र प्रताप से पूछा गया था–'कौन जाति के हो?' उनका उत्तर था–'मेहतर'। इस पर पुजारियों का उत्तर था, 'तुम मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते।' अतः राजा साहब मंदिर में दर्शन करने नहीं गये।[26] चौधरी साहब को भी ऐसे मंदिरों में, जहां इंसान-इंसान के बीच भेद किया जाता हो, कोई रुचि न थी। वह धर्म को, आत्मा के उत्कर्ष का मार्ग मानते थे, इंसानों को ठगने का साधन नहीं। यही कारण है कि उन्होंने धर्म के नाम पर राजनीति नहीं की, उनकी राजनीति का स्पष्ट आधार था–गरीबी उन्मूलन, जातीय एकता की स्थापना, देश को सशक्त तथा समृद्ध बनाना।

इतिहास के योग्य छात्र स्वर्गीय चौधरी साहब को लगा कि मंदिरों की यह हालत वैष्णवोचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि उन्होंने गांधीजी का भजन सुना था–'वैष्णव जन तो तैने कहिए पीर पराई जाने रे', तात्पर्य है कि वैष्णव तो वही होता है, जो दूसरों के दर्द को समझता है।' ये मंदिर तो उल्टे दूसरों को दर्द देते हैं। यहां तो देवता की दासी बनकर रहने वाली नारियों का शारीरिक एवं मानसिक शोषण होता है और यहां देवता के दर्शनार्थियों को भी ठगा जाता है। उनकी श्रद्धा तथा भक्ति का शोषण किया जाता है। तुलसी भी कहते हैं–'परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई।' देवता की आढ़ में होते धार्मिक शोषण से, छात्र चौधरी चरण सिंह को, ऐसे धर्म और उसकी आढ़ में जनता का आर्थिक-मानसिक और शारीरिक शोषण करने वालों से अरुचि

होना स्वाभाविक था।

चौधरी चरण सिंह जैसे प्रतिभाशाली तथा जिज्ञासु छात्र ने निश्चय ही यह जानने का प्रयास किया होगा कि हमारी धार्मिक और सामाजिक परम्परा में ये विकृतियां कैसे आई? कैसे यह धर्म-परायण देश दुराचरण-परायण हो गया? देवता की पूजा-अर्चना में लगा पुजारी, मठाधीश और पुरोहित मानसिक तथा ऐन्द्रिक विकारों का शिकार कैसे बन गया? इन प्रश्नों पर विचार करते समय, वह इस नतीजे पर पहुंचे होंगे कि एकता, समता और समष्टिमूलक वैदिक संस्कृति की धारा के तीन काल रहे हैं–पहला, मंत्र-काल। यह वह काल था, जब हमारे पूर्वज ऋषियों ने, अपने तप एवं ज्ञान के बल के परिणामस्वरूप, अपने मानस में धर्म का स्वयं साक्षात्कार किया था और उसको मंत्रों द्वारा वाणी प्रदान की थी। यही रचनात्मक तथा सर्वोत्तम युग था। दूसरा काल वह था, जब मंत्रों का दर्शन या निर्माण कम हुआ और स्मरण में रखे गये मंत्रों को गुरु-शिष्य की प्रवचन मिश्रण-पद्धति द्वारा सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया था और तीसरा काल वह था, जब प्रवचन तथा श्रवण-परम्परा का अपकर्ष हुआ अर्थात् मंत्रों को याद रखने के स्थान पर ग्रंथों के रूप में लिखने की परम्परा चल पड़ी थी। वैदिक संहिता तथा ब्राह्मण-ग्रंथों की रचना इसी काल में हुई थी और यही वह काल था, जब एक वर्ग या जाति विशेष ने, अपने वर्ग या जाति को, महत्त्वपूर्ण, धर्म एवं ज्ञान का एक मात्र ज्ञाता, पूज्य तथा देवतास्वरूप सिद्ध किया था।

एकता तथा समतामूलक वैदिक संस्कृति को विकृत करने के अभिप्राय की खोज में लगे चौधरी साहब को, इसके सूत्र शतपथ-ब्राह्मण, तैत्तिरीय संहिता, निरुक्त, मनुस्मृति, विष्णु स्मृति, आपस्तम्ब स्तुति, महाभारत, तुलसी कृत रामचरित मानस आदि ग्रंथों में मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण 3/1/1/9-10 में कहा गया है–'ब्राह्मणों चैव राजन्यो वा वैश्यो वा तेहि याज्ञिया। ...न देवाः सर्वेणेव संवदन्ते। ब्राह्मणेन चैव राजन्येन वा वैश्येन वा। तेहि याज्ञिया'–अर्थात् 'देवता लोग सब किसी से बात नहीं करते। वे केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से ही बातें करते हैं, क्योंकि इनको ही यज्ञ करने का अधिकार है।'[27] शतपथ ब्राह्मण में ऐसा इसलिए कहा गया था कि ब्राह्मण-पुरोहित को इकट्ठा करना था, प्रचुर मात्रा में स्वर्ण, और वह मिलता था इन्हीं तीनों वर्णों से। यहां स्पष्ट रूप से ऊंच-नीच का भेद पैदा करने का प्रमाण मिलता है। यज्ञ की प्रथा का प्रचलन करने का उद्देश्य, देवता को प्रसन्न करने के बहाने से, दक्षिणा में स्वर्ण पाने की एक मात्र योजना थी। शतपथ ब्राह्मण भी कहता है–'हतं यज्ञम् दक्षिणम्' अर्थात्

दक्षिणा-रहित यज्ञ कभी सफल नहीं होता। यज्ञ का, यथार्थ में मौलिक सिद्धांत यही था, अन्य सभी सिद्धांत तो बहाना मात्र थे। शतपथ ब्राह्मण कहता है–'तस्य हिरण्यं दक्षिणा। आग्नेयो या एवं यज्ञो भवति' अर्थात् इस यज्ञ में स्वर्ण की दक्षिणा ही देनी चाहिए, क्योंकि यह यज्ञ अग्नि देवता के लिए किया जाता है। अग्नि-देवता के लिए यज्ञ किया जाता है, यह तो एक बहाना मात्र है, यथार्थ में यज्ञ किया जाता था, दक्षिणा में स्वर्ण पाने के लिए। कात्यायन श्रोत-सूत्र स्पष्ट कहता है–'न रजतं दद्यात् बर्हिषि पुरास्य संवत्सराद् गृहे रुदन्ती तिश्रतेः' अर्थात् यज्ञ में चांदी के रूप में दक्षिणा नहीं देनी चाहिए, क्योंकि श्रुति (तैत्तरिय संहिता 1/5/11) में कहा गया है कि जो ऐसा करता है, उसके घर में एक वर्ष में ही रोना हो जाता है।[28] स्पष्ट है कि दक्षिणा में स्वर्ण पाने के लिए यज्ञ की परंपरा विकसित की गयी थी और उसके समर्थन में पर्याप्त साहित्य की रचना भी।

शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य ग्रंथों में यज्ञ के महत्त्व, यज्ञ में केवल स्वर्ण की दक्षिणा देने पर बल दिये जाने और केवल ब्राह्मण द्वारा पुरोहित कार्य करने की अनिवार्यता प्रतिपादन से स्पष्ट हो जाता है कि यह सब केवल ब्राह्मण-पुरोहित के हितों को सुरक्षित करने की योजना थी, क्योंकि एक समय ऐसा भी था, जब किसी भी जाति का व्यक्ति पुरोहित हो सकता था। इसका एक स्पष्ट उदाहरण मौजूद है, राजवंश के देवापि ने, अपने भाई शांतनु का पुरोहित बनकर यज्ञ कराया था। यह वैदिक वाङ्मय में सुप्रसिद्ध है।[29] लेकिन एक समय ऐसा भी आया कि गैर-ब्राह्मण ऋषि को यज्ञ में शामिल भी न होने दिया गया। रोहितक (वर्तमान में रोहतक) क्षेत्र में सरस्वती के तट पर होने वाले यज्ञ में, 'कवष ऐलुष' को गैर-ब्राह्मण होने के कारण, यज्ञ में शामिल होने से रोकने के लिए धन्व (पानी रहित क्षेत्र) में खिंचवा कर फिकवा देना इसका प्रमाण है।

यज्ञों के माध्यम से, धंधा करने की एक योजना, ब्राह्मण पुरोहितों ने और निकाल ली। वह योजना थी, नीच जाति के लोगों को ऊंची जाति का बना देना। उत्तर-भारत में, इसका सर्वाधिक प्रमुख उदाहरण है, राजस्थान के आबू पर्वत पर किये गये यज्ञ का है, जिससे राजपूतों के चार कुलों के निकलने की बात कही गयी है। इसके अनुसार यज्ञ से उत्पन्न चार कुल हैं–प्रतिहार, चौहान, चालुक्य और परमार। प्रत्येक समझदार आदमी की तरह इतिहास के छात्र चरण सिंह ने अवश्य सोचा होगा कि आग से धुआं तो निकल सकता है, पर आदमी नहीं। वह जल सकता है, पर उससे जीवित नहीं निकल सकता।

दूसरा उदाहरण है शिवाजी का। औरंगजेब के शिकंजे से निकल कर शिवाजी

जब महाराष्ट्र पहुंचे और उन्होंने अपने अभिषेक की तैयारियां करानी प्रारम्भ की तो कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि वह क्षत्रिय नहीं है। तब शिवाजी ने भारत के कई नगरों से पंडित बुलाये। उनको प्रचुर मात्रा में दक्षिणा दी और सबने एक स्वर में उनको क्षत्रिय घोषित किया और अभिषेक कराया। दक्षिण भारत में, जातीय उत्थान की एक आश्चर्यजनक रीति अस्तित्व में थी, जो 'हिरण्यगर्भ अनुष्ठान' कहलाती थी। इस रीति के अनुसार, छोटी जाति के व्यक्ति को ऊंची जाति का बनाने के लिए , एक स्वर्ण-निर्मित बड़े घट (घड़ा) में बैठाया जाता था। स्वर्ण-घट का निर्माण वह व्यक्ति स्वयं कराता था और बाद में उसे अन्य दक्षिणा के साथ ब्राह्मण पुरोहित को दे दिया जाता था। वह घड़े में, सिकुड़ कर उसी प्रकार बैठता था, जिस प्रकार माता के गर्भ में शिशु बैठता है। पुरोहित द्वारा मंत्र बोलने के बाद, वह बाहर निकलता था और स्वयं को ऊंची जाति का मान लेता था।[30] दक्षिणा में, प्रचुर मात्रा में स्वर्ण पाने के लिए कितना बड़ा छद्म ब्राह्मण-पुरोहित ने खड़ा किया था। कितनी ऐतिहासिक भ्रांतियां उत्पन्न की थीं? चार राजपूत कुलों के अनेक शिक्षित लोग, आज भी, स्वयं को यज्ञ से उत्पन्न हुआ मानकर एक मानसिक भ्रांति का शिकार होकर स्वयं की औरों से श्रेष्ठ समझते हैं। इस प्रकार की ऐतिहासिक भ्रांतियां पैदा करने, राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि बताने, स्वयं को भूदेव कहलाने और यह सिद्ध करने कि ईश्वर केवल सवर्णों से ही बात करता है आदि सिद्धांतों की स्थापना करने का अभिप्रेत ब्राह्मण-पुराहित की संकीर्णता, स्वार्थपरता और अंधविश्वास पैदा करने की प्रकृति का सूचक है।

अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अर्थात् क्षत्रिय एवं वैश्यों से धन का संचय करने के लिए उनको महत्त्व दिया गया और बिना पारिश्रमिक दिये सेवा कराने के उद्देश्य से शूद्र वर्ग को, वैदिक युगीन सामाजिक एकता से, अलग कर दिया। इसके लिए 'मनु' के नाम पर रची गयी मनुस्मृतियों में अनेक उदाहरण दिये गये हैं। एक स्थान पर कहा गया है–

शूद्रतु कारमेददास्यं क्रीतमक्रीतमेवदा।
दास्यायैव हि स्पृष्टोऽसौ ब्राह्मनस्य स्वयंभूवा ॥[31]

अर्थात् शूद्र खरीदा हुआ तो अवश्य नहीं, उससे दास कर्म कराया जाए, क्योंकि विधाता ने उसको ब्राह्मण का दास-कर्म करने के लिए ही बनाया है। जाति के आधार पर शोषण का यह नितांत घृणित तरीका था, जिसने आर्यों के एक वर्ग को, अपने आर्य साथियों का घोर शत्रु बना दिया है। वैदिक समाज

की एकता में दरार पैदा करने के अलावा, अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए सिद्धांतों की रचना की गयी। एक उदाहरण देखिए–

न स्वामिना विस्तृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विपुच्यते।
निसर्ग जहितस्य कस्तमातदपोहति ॥[32]

अर्थात् स्वामी द्वारा दास-कर्म से शूद्र को छुटकारा दे देने पर भी उसको छुटकारा नहीं मिलता। कारण यह है कि उसकी दासता स्वाभाविक है, उससे उसको कोई मुक्त नहीं कर सकता। यह पढ़कर, छात्र चरणसिंह के मन में, मनुस्मृति के लेखक की दृष्टि पर, बड़ी अरुचि पैदा हुई होगी, कारण वह न केवल ब्राह्मण के शोषण को शाश्वत बनाने की योजना करता है, वरन् सामाजिक विकास और उसकी प्रक्रिया में शक्ति तथा ज्ञान के बल पर सम्पत्ति अर्जित करने के वैज्ञानिक सिद्धांत पर भी पानी फेर रहा है। समस्त जातियों की एकता तथा समता के समर्थक चौधरी चरणसिंह के मन को उस समय अधिक ठेस लगी, जब पुरोहित ब्राह्मण ने सिद्धांतों का जाल यहां तक बिछाया कि शूद्र को शिक्षा तथा ज्ञान प्रदान न किया जाए, ताकि उसके मन में, उनकी व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव पैदा न हो। कहा गया है–

न शूद्राय मति दद्यात नोष्छिनं हविष्कृतम्।
न चास्योपटिशोदग्मं न चाट्य व्रतमादिशेत् ॥[33]

अर्थात् शूद्र को न तो बुद्धि प्रदान करनी चाहिए, न उसको धर्म का उपदेश ही दिया जाना चाहिए और न किसी व्रत का उपदेश करना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह शूद्र के साथ ही दसंवृत नामक नरक में डूब जाता है। मानव द्वारा मानव के साथ की जाने वाली अन्याय की इस योजना पर, चौधरी साहब की आत्मा अवश्य विद्रोह कर उठी होगी और उसकी शांति के लिए, व्यक्तिगत स्तर पर, तथा यथासंभव राजनीतिक स्तर पर, आपने इस उपेक्षित, उत्पीड़ित तथा शोषित वर्ग के साथ आत्मीयता बनाये रखी थी। पंडित नेहरू को लिखा गया पत्र भी इसी भावना का एक अंग था। यदि इनके प्रस्ताव को राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार कर लिया गया होता, तो यह देश जातीय विषमता के अभिशाप से छुटकारा पा गया होता। फलतः यहां राजनीतिक दलों का निर्माण जातियों के आधार पर न होकर विचार एवं चेतना के आधार पर होता और देश सच्चे अर्थ में लोकतंत्र की ओर बढ़ता। ब्राह्मण-पुरोहित ने, अपने महत्त्व की रक्षा के लिए सिद्धांत बनाया–

एतदेश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्व-स्व चरित्र शिक्षेरन पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥[34]

अर्थात् इस देश के अग्रजन्मा ब्राह्मण विश्वगुरु हैं। संसार के सभी व्यक्तियों ने उन्हीं से अपने-अपने आधारों के अनुरूप शिक्षा ग्रहण की है। इससे बड़ा झूठ शायद ही विश्व की किसी जाति ने बोला हो। यहां तक उस अंग्रेज जाति ने भी नहीं, जिसके राज्य में कभी सूर्य छिपता न था और न सम्राट अकबर ने, जो भारत का महान् सम्राट ही नहीं, वरन् जिसकी सेवा यहां के राजा-महाराजा ही नहीं, उनके ब्राह्मण मंत्री तथा पुरोहित भी करते थे। लेकिन प्रचार के साधन हमेशा इनके हाथों में रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपने महत्त्व के प्रतिपादन में कोई कमी नहीं रहने दी। यथार्थ में, इनका सिद्धांत न तो भारतीय संस्कृति की रक्षा था, न धर्म तथा ईश्वरीय शक्ति का संधान। धर्म, संस्कृति और ईश्वर-आराधना तो इनका एक मात्र प्रचार रहा है, असली उद्देश्य होता है सत्ता, शक्ति और सम्पत्ति पर अधिकार जमाना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, यह वर्ग सिद्धांतों की रचना तथा प्रचार करता है। भारत में बौद्ध तथा जैनों ने इनको सफल चुनौती दी तो, अतः सिद्धांत बनाया गया—'बौद्धा-जैनाश्चशूद्राः' अर्थात् बौद्ध और जैन शूद्र होते हैं। कहा यह भी गया है—'हस्तिनाऽपि ताड़येत न गच्छयेत जैन मंदिरम्' अर्थात् मारने के लिए पीछे दौड़ते हाथी से प्राणों को बचाने के लिए भी जैन मंदिर में न जाओ।' इस से बड़ा आत्मकेन्द्रित दृष्टिकोण क्या होगा? इसी संकीर्णता का निर्वाह करते हुए 'मनु' के नाम पर उन्होंने कहा—'ब्राह्मण शूद्र का धन बेरोकटोक ले सकता है, क्योंकि उसका अपना धन कुछ भी नहीं है। समस्त धन उसके स्वामी का है।[35] दूसरे की कमाई पर अधिकार कर लेने के सिद्धांत ही ब्राह्मण पुरोहित ने नहीं गढ़े, वरन् यह भी व्यवस्था दी—'धन के संग्रह करने में समर्थ शूद्र को ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करके वह ब्राह्मण को ही सताता है।[36] वैज्ञानिक मस्तिष्क के छात्र, चरणसिंह जी के मन में, यह प्रश्न अवश्य उठा होगा कि अपने परिश्रम से धन का उपार्जन शूद्र करे, ऐसा करने में किसी के हक को न मारे तथा किसी को यातना न दे, फिर भी ब्राह्मण को कष्ट क्यों होगा? इस प्रश्न का उत्तर भी सहज था कि यह सब ब्राह्मण के महत्त्व प्रतिपादन की योजना का एक अंग था। इसी का एक रूप, तुलसी के 'रामचरित मानस' में मिलता है—

'पूजिये विप्र ग्यान गुन हीना।
शूद्र न पूजिये चतुर प्रवीना ॥'

तात्पर्य है कि ज्ञान तथा गुण रहित अर्थात् मूर्ख और निर्गुण ब्राह्मण की तो पूजा की जानी चाहिए, लेकिन चतुर शूद्र की नहीं। इतिहास के सजग छात्र चरणसिंह को, इस निष्कर्ष पर पहुंचने में, किसी प्रकार की कोई, परेशानी न हुई होगी कि इन भ्रामक सिद्धांतों से ब्राह्मण पुरोहित को, बिना कठोर परिश्रम किये अपार सम्पति मिली, पर देश कमजोर हुआ और कालान्तर में दासता का शिकार भी। एक समय ऐसा आया कि मंदिरों के गर्भगृहों में संकलित समस्त सम्पत्ति को लुटेरे ले गये और मंदिरों को अपवित्र कर दिया गया। सोमनाथ के शिव मंदिर का ध्वंस तथा लूट इसका प्रमाण है। इस मंदिर में शिवलिंग की प्रतिमा चौदह मन स्वर्ण की थी, जिसको अन्य सम्पत्ति के साथ, हजारों ऊंटों पर लादकर महमूद गजनवी ले गया था। आम जनता की श्रद्धा के कारण एकत्र की गयी सम्पत्ति से मालदार हुआ विधर्मी, औरंगजेब ने जोधपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, मेवाड़, आमेर, गोलकंडा, एलोरा, त्रयंकेश्वर, नरसिंहपुर, पंडारपुर, भुवनेश्वर, बड़नगर, जयसिंहपुरा (दिल्ली) आदि के अधिकांश मंदिर तुड़वा दिये। उनकी सम्पत्ति लूट ली गयी और मूर्तियों को मस्जिदों की सीढ़ियों में लगवा दिया गया। इससे पूर्व, मथुरा के कटरा केशवदेव के मंदिर में दारा द्वारा लगवाया गया पारदर्शी पत्थर निकलवा लिया गया था। इतिहास के इन तथ्यों से, छात्र चरणसिंह इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि यदि मंदिर, उनकी देवमूर्तियां तथा पूजा ही हिन्दू-धर्म होता तो वह कभी का समाप्त हो गया होता। अस्तु, उनको एक ओर तो यह विश्वास हो गया कि धर्म आस्था, आत्मशोधन, लोकहित का माध्यम है और दुर्गुणों से छुटकारा पाने का एक साधन। वह केवल आडम्बरों का तमाशा दिखाने की क्रिया नहीं। दूसरी ओर, उनको यह भी विश्वास हो गया कि पुरोहित, पुजारी तथा मठाधीशों में अपने देवता की पवित्रता तथा उसके नाम पर एकत्र की गयी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने की शक्ति नहीं थी। यही नहीं, उन्होंने जिन राजा, महाराजा तथा सम्राटों को देवता का प्रतिनिधि घोषित किया था, वे इतने दुर्बल तथा डरपोक थे कि महमूद गजनवी के भय से, अपना राज्य तथा राजधानी तक को छोड़कर भाग गये थे। दूसरी ओर, उनकी दृष्टि खोखर गोत्र के जाट-किसानों की वीरता की ओर गई, जिन्होंन सोमनाथ का ध्वंस करके, वापस लौटते हुए, महमूद गजनवी की सेना को ठोका-पीटा तथा उनसे लूट का सामान छीना था और इस बात से बेफिक्र रहे कि महमूद गजनवी का सामना करने के भय से अनहिहावाण का भीमदेव सोलंकी जैसा गर्वीला राजा भाग गया था, उससे झगड़ने का तात्पर्य प्राणों की बलि देना भी हो सकता है। निश्चय ही, छात्र चरणसिंह

को, पुरोहित, पुजारी और राजा पर नहीं, किसानों पर गर्व हुआ होगा। उनके गर्व की मात्रा, उस समय अधिक बढ़ गयी होगी, जब आपने पढ़ा होगा कि जिस मोहम्मद गौरी के सामने पृथ्वीराज चौहान, जयचंद एवं अन्य राजा नतमस्तक हो गये थे, उसको रायसाल नामक एक जाट-किसान के संगठन ने, गजनी लौटते समय, सन् 1206 में एक संघर्ष के दौरान, मार गिराया था। इस घटना को पढ़कर छात्र चरणसिंह निश्चय ही इस विचार पर पहुंचे होंगे कि देश के इन सम्राटों की अपेक्षा, यहां का किसान निर्भीक, बहादुर तथा देश के शत्रु को पाठ पढ़ा देने वाला रहा है। उनके इस निश्चय की पुष्टि, सर्वखाप पंचायत के सन् 1201 के प्रस्ताव से हुई, जिसमें पृथ्वीराज तथा अन्यों की पराजय के बाद, अपनी तथा अपने धर्म की रक्षा के लिए, उत्तर-दोआब के तेरह खापों के प्रतिनिधियों ने, प्रस्ताव पारित किया था—'हम अपनी रक्षा करेंगे और धर्म की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर कर देंगे'[37] और सचमुच उन्होंने ऐसा किया भी। वे रायसाल के नेतृत्व में एकत्र हुए और 1206 में[38] गौरी को समाप्त करके देश तथा धर्म की रक्षा की। चरण सिंह जी को इस बात पर प्रसन्नता अवश्य हुई होगी कि पुरोहित तथा पुजारी धर्म का ढोल पीटते रहे, लेकिन वे न तो धर्म की रक्षा कर पाये और न उन सामंतों की, जिनसे धर्म की आढ़ में मंदिर बनवाये थे और दक्षिणाएं लीं थीं। इसी प्रकार 1197 में सुल्तान कुतुबुद्दीन ने पंचायत की स्वाधीनता पर प्रतिबंध लगाया था और हिन्दुओं पर जजिया। तब भी केवल पंचायत के बारह खापों के किसान प्रतिनिधियों ने ही सुल्तान के दोनों प्रतिबंधों का विरोध किया था।[39] किसी राजा, पुरोहित तथा मठाधीश ने नहीं। लगभग यही कार्य, किसानों की पंचायत ने, सुल्तान नसीरुद्दीन के काल में सन् 1248 ई. में किया था। इस समय, पंचायत के प्रस्ताव थे कि किसी व्यक्ति को शाही प्रशासन की सेवा के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा, हानिकारक करों को हटा दिया जाए, किसी स्त्री को उसकी जाति की अनुमति के बिना न ले जाया जाए।[40]

सर्वखाप पंचायत ने, इसी प्रकार के प्रस्ताव सन् 1297 में अलाउद्दीन खिलजी, 1326 ई. में मोहम्मद शाह तुगलक, सन् 1490 में सिकन्दर लोदी और सन् 1661 ई. में औरंगजेब के प्रशासन की लोक-हित-विरोधी नीति की खिलाफत करते हुए पारित करके अपनी शक्ति तथा संगठन की राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया था।[41] विशेष बात यह है कि आज की सरकारों की तरह पंचायत केवल प्रस्ताव पास ही नहीं करती थी, वरन् उनको लागू भी करती थी।

इतिहास की एक और ऐसी घटना है, जिसने छात्र चरण सिंह को अत्यधिक

प्रभावित किया था। वह घटना है, सन् 1757 में, भारत पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणकाल की। अब्दाली ने दिल्ली से आगरा तक के क्षेत्र को लूटकर शमशान बनाने के लिए 20,000 सैनिकों के साथ, अपने सेनापति जहांन खां तथा दिल्ली के वजीर नजीबुद्दौला को 10,000 सैनिकों के साथ भेजा था। दोनों ने, हिन्दुओं के प्रख्यात् तीर्थस्थल मथुरा तथा वृंदावन को ध्वस्त करने का पूरा इरादा कर लिया था।

इन दोनों स्थानों को, भयंकर लूट-पाट से बचाने के लिए न तो मराठा सेनापति आगे आये, जो भारत पर भगवा झंडा फहराने का स्वप्न देख रहे थे तथा तीन वर्ष से दोआब को चूसने के काम में लगे थे, न वे व्यापारी आगे आये, जो अब्दाली को भेंट करने के लिए धन एकत्र कर रहे थे और न वे पण्डे-पुजारी आगे बढ़े, जो युगों से मंदिरों को अपनी कमाई का माध्यम बनाये हुए थे। यदि कोई, मथुरा और वृंदावन की सांस्कृतिक गरिमा और निर्दोष जनता को बचाने के लिए सामने आया था, तो वे थे महाराजा सूरजमल की सेना के किसान सैनिक ओर उनके वीर पुत्र जवाहरसिंह। यदुनाथ सरकार के इन शब्दों को पढ़कर, बालक चरणसिंह को किसानों की देशभक्ति पर अटूट विश्वास हो गया था। यदुनाथ सरकार ने लिखा है–'परन्तु भगवान कृष्ण का प्रसिद्ध जन्म-स्थान संघर्ष के बिना पराजित होने वाला न था। यह सत्य है कि दिल्ली, आगरा और यमुना के परले किनारे के दोआब को तीन बरस तक बुरी तरह चूसते रहने के बाद मराठे भाग गये थे। इन पवित्रतम वैष्णव तीर्थों की रक्षा में एक भी मराठे का खून नहीं बहा। उसकी अखिल भारतीय सर्वोपरिता (हिन्दू पाद पातशाही) में रक्षा का कर्तव्य नहीं आता था। परन्तु जाट-किसानों ने दृढ़ निश्चय किया कि विनाशकारी लुटेरा, उनकी लाशों के ऊपर से गुजर कर ही ब्रज की पवित्र राजधानी तक पहुंच सकेगा।'[42] सचमुच हुआ भी यही, मथुरा से आठ मील पहले, चौमुहा नामक स्थान पर, दस हजार जाट-किसान मथुरा की रक्षा में शहीद हो गये थे।[43] जाटों के इस प्रकार के बलिदानी तेवरों को देखकर ही कालिका रंजन कानूनगो ने लिखा है–'ऐतिहासिककाल से जाट बिरादरी हिन्दू समाज के अत्याचारों से भाग कर निकलने वाले लोगों को शरण देती आई है। उसने दलितों और अछूतों को ऊपर उठाया है, उनको समाज में सम्मानित स्थान प्रदान कराया है तथा शारीरिक बनावट और भावनाओं में उन्हें रूप-रूप आर्य संरचना प्रदान की है।'[44]

इन दोनों धार्मिक-सांस्कृतिक नगरों के ध्वंस, मंदिरों की लूट, तथाकथित

धार्मिकों की कायरता, शिवाजी के वंशज, मराठों की हिन्दू-भावना के खोखले दावे और राजस्थान के राजा एवं ठिकानेदारों की कायरता का विवरण पढ़कर छात्र चरणसिंह को विश्वास हो गया होगा कि ये लोग धर्म के यथार्थ रूप का स्पर्श तक नहीं कर पाते और न उसके लिए कोई प्रयास ही करते हैं। इनके प्रत्येक कार्य के पीछे उनके हित निहित होते हैं, धर्म या देश की रक्षा का उद्देश्य नहीं। ये दिखावा करते हैं, देश-हित का, उपदेश करते हैं, धर्म की रक्षा का, लेकिन उनका कार्य प्रायः प्रत्येक कथन का विरोधाभास होता है, उनके कर्म और इस स्थिति का लाभ मिलता है, राष्ट्र-विरोधी शक्तियों को। यदि गहराई के साथ देखा जाए, तो हम अवश्य इस नतीजे पर पहुंच जायेंगे कि राजनीति के दंगल में उतरने के बाद, अपने अध्ययनकालीन विश्वासों के ठोस प्रमाण, उनको राजनीति और राजनेताओं के कथनों तथा कर्मों में मिले थे।

आपने यह अनुभव किया था कि राजनीतिक नेता बात करते हैं समाजवाद की और लाभ पहुंचाते हैं पूंजीपतियों को, वे दुहाई देते हैं लोकतंत्र की और उनके आचरण समृद्ध बनाते रहते हैं उनके परिवार को, वे नारे लगाते हैं प्रत्येक व्यक्ति को रोटी, कपड़ा और मकान देने का, लेकिन उनके काम आम आदमी को गरीब और असुरक्षित बनाते हैं तथा समृद्ध बनाते हैं पैसे वाले वर्ग को। देश के राजनीतिक नेताओं के इस चारित्रिक पतन पर चौधरी साहब ने कितने आंसू बहाये हैं, यह बहुत कम लोगों ने देखा है। उनका विश्वास था कि आम आदमी के भले के लिए सत्ता पर आम आदमी का अधिकार होना नितांत आवश्यक है। कहने के लिए तो आज भी हमारी सरकारें जनता द्वारा निर्वाचित की गयी हैं, लेकिन शासन जनता की समृद्धि के लिए नहीं करतीं। उनसे हित होता रहा है, थोड़े-से आदमियों का। फलतः गरीबी, बेरोजगारी, असुरक्षा और अशांति निरंतर बढ़ती जा रही है। चौधरी साहब की दृष्टि में, शासन का प्रथम दायित्व, जनता का हित और राष्ट्र को समृद्ध बनाना था। इस विचार की कीमत पर, वह किसी के साथ समझौता करने को तैयार न थे। यथार्थ में, उनकी प्रतिबद्धता, लोकतंत्र के दूसरे एवं असली रूप के साथ थी, जिसका उद्देश्य होता है, लोक का कल्याण, जनता का हित तथा राष्ट्र की समृद्धि। वह लोकतंत्र के पहले रूप को औपचारिक मानते थे, क्योंकि इसका उद्देश्य केवल चुनाव कराना मात्र होता है।

वह किसान वर्ग के समर्थक इसलिए थे कि किसान ही एक मात्र ऐसा वर्ग है जिसके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व और शूद्र सभी समान हैं और जिसने हमेशा उन छोटी जातियों को आर्य बनाने तथा उनका सामाजिक स्तर उठाने

का प्रयास महाभारत काल से लेकर अब तक किया है। खेती के माध्यम से जीविका कमाने वाला प्रत्येक वर्ग, उनकी नजरों में किसान था।

संदर्भ

1. सम्पादक डा. नत्थन सिंह, उत्तर-भारत के जाटों की शासन-व्यवस्था, 1990, पृष्ठ 221
2. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, 1986, पृष्ठ 36
3. डा. रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद, भाग-2, पृष्ठ 324-30
4. वही
5. डा. नत्थन सिंह, इतिहास पुरुष : महाराजा सूरजमल, द्वितीय संस्करण 1991, पृ. 36
6. वही
7. डा. रामविलास शर्मा, अठारह सौ सत्तावन की राज्यक्रांति, पृष्ठ
8. विस्तार के लिए पढ़िये 'जातिवादी कौन' और डा. नत्थन सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'जातीयता का अभिशाप और चौ. चरण सिंह (प्रकाशक : किसान ट्रस्ट, दिल्ली)
9. महाभारत, शांतिपर्व, 261-9
10. स्कन्ध पुराण, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 526
11. बाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, पृ. 38
12. डा. दामोदर धर्मानन्द कौसम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, सं. 1977, पृष्ठ 105
13. सूर्यकान्त बाली, भारत के मील-पत्थर, नवभारत टाइम्स, 15 मई 1996
14. संपादक मिश्रबंधु, बुद्धपूर्व भारतीय इतिहास, संवत् 1996, पृष्ठ 176
15. वही, पृष्ठ 125
16. डा. दामोदर धर्मानन्द कौसम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृ. 104
17. वही, पृ. 105
18. सम्पादक मिश्रबंधु, बुद्धपूर्व भारतीय इतिहास, पृ. 119
19. डा. दामोदर धर्मानन्द कौसाम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृ. 131
20. वही, पृ. 66-67
21. वही, पृ. 105-106
22. ऋग्वेद, 10/191/2
23. अथर्वेद, 2/30/1
24. बाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, 38
25. वही, अयोध्याकाण्ड, 160-9

26. राजा महेन्द्र प्रताप, माई लाइफ स्टोरी, पृ. 13, 1947, वर्ल्ड फेडरेशन देहरादून
27. मंगल देव शास्त्री, भारतीय संस्कृति का विकास वैदिक-धारा, पृष्ठ 168
28. वही, पृ. 170
29. वही, पृ. 170
30. डा. डी. डी. कौसाम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृष्ठ 215
31. मनुस्मृति, 8/413
32. वही, 8/414
33. वही, 4/91
34. वही
35. वही, 8/417
36. वही, 15/129
37. सम्पादक डा. नत्थन सिंह, उत्तर भारत के जाटों की शासन-व्यवस्था, पृष्ठ 218
38. जयचन्द्र विद्यालंकार, इतिहास-प्रवेश, पृ. 286
39. सम्पादक डा. नत्थन सिंह, उत्तर भारत के जाटों की शासन-व्यवस्था, पृष्ठ 219
40. वही, पृ. 220
41. वही, पृ. 220, 221, 222 तथा 224
42. यदुनाथ सरकार, फॉल ऑफ मुगल ऐम्पायर, भाग-2, पृष्ठ 82
43. के. नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृष्ठ 91
44. सम्पादक डा. नत्थन सिंह, जाटों का इतिहास, पृष्ठ 11

परिवार-पोषण की दिशा में

चौधरी साहब की शिक्षा का प्रारम्भ भी मेरठ नगर से हुआ था और समापन भी मेरठ से। सन् 1925 में शिक्षा पूरी कर लेने के बाद, वह वैवाहिक बंधन में बंध गये थे। इसी वर्ष, महान् क्रांतिदर्शी श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में महर्षि दयानन्द जन्म-शताब्दी का आयोजन हुआ था। महर्षि की धार्मिक और राष्ट्रीय क्रांति के समर्थक सहस्त्रों लोग मथुरा पहुंचे थे। इनमें वकालत की परीक्षा पास किये चौधरी साहब भी थे और आर्य-समाज की सामाजिक क्रांति की पक्षधर, जिला रोहतक के ग्राम गढ़ी कुण्डल की एक कन्या गायत्री देवी भी थीं। गायत्रीजी ने, जालंधर के कन्या महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। वह अपने गांव की अन्य महिलाओं, बालिकाओं और अपने दादा जी के साथ मथुरा आई थीं। एक दिन, वह अन्य बालिकाओं के साथ, अपने तम्बू के समीप, भूमि को साफ करके तथा लीपकर चौका के लिए पवित्र स्थान बना चुकी थीं। तभी अपने कुछ अन्य साथियों के संग चौधरी साहब उधर से गुजरे और उनके पैर चौका की भूमि पर पड़ गये। इस पंर गायत्री जी ने, जूते पहन कर चौके में आने के दुस्साहस पर, चौधरी साहब की शालीनतापूर्वक भर्त्सना की। दोनों की यह पहली मुलाकात थी, जो कालान्तर में विवाह में परिणित हो गयी।

वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने के बाद, अब चौधरी साहब के सामने दो उद्देश्य थे। पहला राजनीति में शामिल होकर देश को स्वाधीन बनाना और दूसरा परिवार-पोषण के लिए धन का उपार्जन करना। चौधरी साहब की गणना उन राजनीतिक लोगों में नहीं होती, जिन्होंन राजनीति को पेशा बनाकर असीम दौलत कमाई थी या अर्जित की है और देश के समुचित विकास के मार्ग में, व्यवधान प्रस्तुत किये हैं। उनके लिए आजीविका और राजनीति दो अलग-अलग मार्ग थे। अतः आपने वकालत करके परिवार-पालन का अभियान प्रारम्भ किया। इसका शुभारम्भ भी मेरठ से ही हुआ। लेकिन चौधरी साहब मेरठ नगर की राजनीतिक चेतना और क्रांतिकारी विचारधारा को ग्रामीण-क्षेत्र में लाना चाहते

थे। अतः आप मेरठ से गाजियाबाद चले आये। यह सन् 1928 की बात है।

उन दिनों, गाजियाबाद में ही प्रसिद्ध कांग्रेसी गोपीनाथ 'अमन' मुख्तयारी करते थे। चौधरी साहब तथा गोपीनाथ 'अमन' दोनों ही नयागंज नामक बस्ती में एक ही मकान में रहते थे। यहां आप के दो-सहयोगी और थे। पहले थे, गांधी आश्रम के पंडित देवमित्र और दूसरे थे पंडित मुन्नी लाल स्वामी। दोनों के सहयोग से, यहां आपने सर्वप्रथम कांग्रेस-कमेटी का गठन सन् 1929 में किया था। इसी वर्ष गाजियाबाद के आर्य-समाज के अध्यक्ष भी आप चुने गये। यहां वकालत करते हुए, आपने केवल अपने परिवार का पालन ही नहीं किया, वरन् चार कार्य और भी किये। पहला था, महर्षि दयानंद सरस्वती की क्रांतिकारी धार्मिक एवं सामाजिक चेतना का प्रसार, दूसरा था, गांधीवाद की राजनीतिक विचारधारा को समाज के कोने-कोने तक पहुंचाना, तीसरा था गरीबों तथा असहाय नारी एवं पुरुषों की निस्वार्थ मदद करना और चौथा था, अपने परिवार को ईमानदारी तथा मेहनत के साथ कमाकर शिक्षित और समर्थ बनाना।

जहां तक पहले उद्‌देश्य की पूर्ति का प्रश्न है, वहां यह कहना ही पर्याप्त होगा कि आर्य-समाज, गाजियाबाद के सभापति बनकर, आपने महर्षि दयानन्द की विचारधारा का जमकर प्रचार किया था। उसके चिह्न और प्रमाण आज भी गाजियाबाद शहर और देहात में देखे जा सकते हैं। दूसरे उद्‌देश्य को पूरा करने के लिए आपने, राजधानी दिल्ली की नाक के नीचे तिरंगे झण्डे को लहराने की व्यवस्था की। गांधीवाद के प्रचार-प्रसार के लिए स्वयं-सेवक तथा प्रतिबद्ध कांग्रेस-जन पैदा किये। स्वयं खादी पहनी और अन्यों को भी पहनने के लिए प्रेरित किया। तीसरे उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए एक घटना सक्षम प्रमाण है। नगरपालिका, गाजियाबाद के एक अधिकारी थे। उन्होंने एक युवती विधवा को फुसलाकर उसका शीलभंग किया था। बात यहीं तक सीमित नहीं रही। अधिकारी महोदय की कुदृष्टि विधवा की पुत्री पर भी थी। वह, उसको दिल्ली घुमाने के बहाने दिल्ली ले गया। दोनों स्टेशन के पास किसी होटल में ठहरे और वहां बालिका का शील-भंग किया।[1] इस घटना की जानकारी चौधरी साहब को दी गई और उनसे उद्धार की प्रार्थना की गई, तो आपने कठोर कदम उठाये। अधिकारी महोदय कन्या को अकेली छोड़कर फरार हो गये। चौधरी साहब ने उसका उद्धार किया। उसी के जाति के, एक उदार शिक्षक के साथ उसका विवाह कराके उसका कल्याण कराया। एक लम्बे समय तक विधवा को भी सहारा दिया। इसी सन्दर्भ में एक घटना मकनपुर गांव की है। इस गांव में, एक गरीब पिता ने, रईसपुर गांव

के एक वृद्ध दुकानदार से रुपये लेकर, अपनी युवती कन्या का विवाह निश्चित कर दिया था। विवाह की सूचना जैसे ही, आर्य-समाज, गाजियाबाद को मिली, तो चौधरी साहब मकनपुर गये। आपने, युवती के पिता को समझाया। वह कन्या के साथ होने वाले अन्याय को समझ तो गया, पर दुकानदार से लिये रुपये लौटने में असमर्थ था। दुर्भाग्यवश चौधरी साहब भी इतनी जल्दी रुपयों की व्यवस्था करने में असमर्थ थे। फलतः एक युवती को वृद्ध के गले बांध दिया गया। इस दुखान्त घटना की व्यथा से, चौधरी साहब सदैव व्यथित रहे थे।[2]

गाजियाबाद में वकालत करते समय, चौधरी साहब के सामने चौथा उद्देश्य था अपने परिवार को सफल और समृद्ध बनाना और इस कार्य को, आपने परिश्रम और ईमानदारी के साथ सम्पन्न भी किया। आपने फौजदारी के मामलों में वकालत न करके दीवानी मुकदमे लेने प्रारम्भ किये। ऐसा इसलिए करना पड़ा कि वह फौजदारी के मामलों के छल-छिद्रों से परिचित थे और उनकी आत्मा इस दिशा में कदम उठाने के लिए तैयार न थी। वह जिन मुकदमों को लेते थे, उनके कानूनी पक्षों को तैयार करते और सफल होते थे। उनको फीस भी अच्छी मिलती थी, पर गरीब तथा दुःखी लोगों से फीस लेते भी न थे। उनका स्वभाव, देहात के लोगों में समझौता कराने का था। इससे उनकी लोकप्रियता बढ़ती गयी और वह वहां के मशहूर वकीलों में गिने जाने लगे।

वकालत के दौर में चौधरी साहब की एक बड़ी उपलब्धि, राष्ट्रभाषा हिन्दी को प्रोत्साहित करने की रही। वह अंग्रेजी भाषा बहुत अच्छी तरह जानते और लिखते थे। उनकी कई पुस्तकें पहले अंग्रेजी में लिखी गयी हैं, लेकिन बातचीत और व्याख्यानों में वह हिन्दी का प्रयोग सैद्धांतिक रूप से करते थे। वह उन लोगों से नहीं थे, जो वोट मांगते हैं हिन्दी में और विधानसभा या लोकसभा में बोलते अंग्रेजी में हैं। चौधरी साहब अंग्रेजी के महत्त्व को स्वीकार अवश्य करते हैं, पर उसको राजभाषा और राष्ट्रभाषा का स्थान देने के लिए तैयार नहीं थे। इसी सिद्धांत के अन्तर्गत, आपने एक मुंसिफ की अदालत में, एक अर्जी-दावा हिन्दी में प्रस्तुत किया था। मुंसिफ ने उनसे आग्रह किया था, वह हिन्दी में लिखे अर्जी-दावा को वापस ले लें, पर आपने ऐसा नहीं किया। इस पर हिन्दुस्तानी मुंसिफ ने, उनका दावा खारिज करके अपनी गुलाम मनोवृत्ति का परिचय उसी प्रकार दिया, जिस तरह अच्छी हिन्दी जानने वाले लोग भी संसद में अंग्रेजी में बोल कर देते हैं। चौधरी साहब ने, उसकी अदालत के मुकदमे लेने बंद कर दिये। इससे उनको आर्थिक हानि तो हुई, पर निष्ठा एवं सिद्धांत-निर्वाह का

लाभ मिला।

राष्ट्रभाषा के प्रति आपकी गहरी आस्था थी। उनकी आस्था का प्रमाण यह भी है कि अपने मंत्रित्वकाल में, आपने सरकारी कामकाज शतप्रतिशत हिन्दी में कराना प्रारम्भ कर दिया था। यही कारण है कि 9 दिसम्बर 1948 में, मेरठ में होने वाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के 36वें अधिवेशन के वह स्वागताध्यक्ष थे। चौधरी-साहब की राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अगाध आस्था, मेरठ के ही पंडित गौरीदत्त शर्मा के कार्य का अगला कदम था। पंडित जी ने, बीसवीं सदी के प्रथम दशक में ही देवनागरी अक्षरों में लिखी गयी हिन्दी का जमकर प्रचार किया था। वह मेरठ की नुमायश में, अपने छात्रों को ले जाते, उनसे नमस्ते के स्थान पर 'जय नागरी' कहलाते और अपने व्यवहार में नागरी लिपि और हिन्दी का प्रचार करते।[3] हिन्दी के प्रति, उनकी सेवा तथा निष्ठा के प्रति श्रद्धा-ज्ञापन के लिए 'देवनगरी स्कूल' की स्थापना की गयी थी, जो आज स्नातकोत्तर कालेज का रूप ले चुका है।

आगरा के अध्ययनकाल में, आपने मुंशी नारायण सिंह, कंगी गली, गोकुलपुरा (आगरा) की हिन्दी के प्रति निष्ठा की कहानी सुनी होगी। मुंशी जी ने, हिन्दी में लिखकर अदालत में एक दस्तावेज प्रस्तुत किया था। उनसे भी कहा गया कि प्रार्थना का उक्त प्रारूप अंग्रेजी में प्रस्तुत किया जाए, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया और प्रान्त के गवर्नर के उस अध्यादेश का संदर्भ दिया, जिसमें हिन्दी को राजकाज की भाषा का माध्यम बनाने की बात कही गयी थी। बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतीय मित्र' नामक अपने समाचार-पत्र में मुंशी जी के साहस तथा कार्य की प्रशंसा उसी प्रकार की थी, जैसे मेरठ के पंडित गौरीदत्त के नागरी-प्रचार की, की थी। यथार्थ में, चौधरी साहब के सम्मुख भी स्वदेशी भाषा, वेशभूषा तथा संस्कृति को महत्त्व देने का प्रश्न था। वह भारतीय भाषा, वेशभूषा और आचारविचार के साथ प्रतिबद्ध थे और इनके पालन में हीन-भावना से ग्रसित न थे। वह आज के अनेक उन नेताओं के अपवाद थे, जो बात करते हैं भारतीय संस्कृति की, पर संसद में झाड़ते हैं, अंग्रेजी।

संदर्भ

1. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृष्ठ 50-51
2. वही, पृ. 50
3. डा. नत्थनसिंह, बालमुकुन्द गुप्त : जीवन और साहित्य, पृ. 439

राजनीतिक उत्कर्ष की दिशा

एक स्थान पर कहा जा चुका है कि सन् 1929 में, आपने गाजियाबाद नगर में कांग्रेस-कमेटी की स्थापना की थी। राजनीतिक-क्षेत्र में प्रवेश का यह प्रथम कदम था। कांग्रेस के संयोजक की हैसियत से आपने ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा करना प्रारम्भ किया। दौरे का प्रथम उद्देश्य था कांग्रेस-विचारधारा के प्रति लोगों में रुचि पैदा करना और खादी पहनने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करना! अपने गांव भदौला में आपने एक बड़ा जलसा गराया, जिसमें अलगूराम शास्त्री तथा उनके कई कांग्रेसी साथी वहां गये थे। चौधरी साहब, गम्भीरतापूर्वक यह अनुभव करते थे कि राजनीतिक स्वाधीनता के बिना देश की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता की गरीबी का निवारण नहीं किया जा सकता। अतः आप, पूरे मन से, राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने लग गये थे। इन्हीं दिनों, अर्थात् 1930 में, समूचे देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। गांधीजी ने नमक के कानून को तोड़ने के लिए डांडी यात्रा की थी। देशभक्ति का ज्वार उमड़ उठा था। चौधरी साहब भी तन-मन-धन से देशभक्ति के तूफान में बह रहे थे। उनके पिताजी के मित्र परगना मजिस्ट्रेट श्री श्याम सिंह पाठक ने, चौधरी साहब को देशभक्ति के बहाव में बहने से रोकने का प्रयास किया। इनके पिताजी से भी, इनको रोकने के लिए कहा, पर सजग पिता, समझदार पुत्र के मार्ग में अवरोध नहीं बने और इस का परिणाम यह हुआ कि नमक-कानून तोड़ने में इनको छह माह कैद की सजा मिली। चौधरी साहब की यह प्रथम जेल-यात्रा थी।

गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की तीव्रता से, अंग्रेज-शासकों ने अपना सिंहासन हिलता हुआ देखा। अतः गांधी-इरविन समझौता हुआ, इसके अन्तर्गत भारतीयों को, स्वशासन की कुछ सुविधाएं प्रदान की गयीं। जिला-बोर्डों के चुनाव हुए। कांग्रेस ने, मेरठ जिला-बोर्ड के चेयरमैन के लिए चौधरी साहब का नाम प्रस्तावित किया। इस समय तक, वह एक ईमानदार, कर्मठ और निष्ठावान कार्यकर्ता के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके थे। अतः उनको निर्विरोध चुन

लिया गया। इसको, उनके सार्वजनिक जीवन का दूसरा सोपान माना जा सकता है।

चौधरी साहब समय की पाबंदी के पक्षधर थे। एक दिन वह ठीक दस बजे मेरठ-बोर्ड के कार्यालय पहुंच गये। देर से आने वाले कर्मचारियों के लिए यह एक मौन चेतावनी थी। फलतः जब तक वह चेयरमैन रहे, बोर्ड के सभी कर्मचारी समय पर कार्यालय आते रहे। लोगों को कर्तव्य-निष्ठ बनाने का यह चौधरी साहब का गांधीवादी तरीका था। चौधरी साहब ने बोर्ड के स्कूलों, सड़कों एवं अन्य प्रतिष्ठानों का निरीक्षण किया। क्षेत्र का व्यापक दौरा करके, बोर्ड को क्षेत्र के लिए उपादेय बनाने का प्रयास किया। कुछ अधिकारियों ने, उनके दौरों का यात्रा-भत्ता-बिल गलत तथा अधिक बनाकर उनके सामने रखा, जिसे चौधरी साहब ने इस आदेश के साथ लौटा दिया कि यह बढ़ा-चढ़ाकर अधिक रुपयों का बनाया गया है। इसको ठीक करके बनाया जाए। भ्रष्ट अधिकारियों के लिए, यह चौधरी साहब का दूसरा गांधीवादी नुस्खा था। उनका उद्देश्य, लोगों के मन में, कर्तव्य के प्रति निष्ठा पैदा करने का था और वह भी दण्ड के द्वारा नहीं, वरन् आत्मा को जगाकर करना था।

प्रायः देखा यह गया है कि चेयरमैन के आसन पर बैठे लोग, संस्थान के नौकरों से, अपना निजी काम कराया करते हैं। चौधरी साहब इसके अपवाद थे। उन्होंने कभी किसी कर्मचारी की मेहनत तथा समय का शोषण नहीं किया। इससे वह व्यक्तित्व की ऊंचाइयों की ओर बढ़ने लगे। उन्होंने निरंतर प्रयास किये कि ग्रामीण-क्षेत्र की जनता के लिए आने-जाने के उचित मार्गों की व्यवस्था की जाए, बालकों की शिक्षा के लिए गांवों में स्कूल खोले जाएं, जहां पीने के पानी का अभाव है, वहां उसकी व्यवस्था की जाए, बोर्ड के स्कूलों में गम्भीरतापूर्वक अध्यापन किया जाए और बोर्ड का कोई कर्मचारी अपने कर्तव्य की अवहेलना न करे। सब लोग निष्ठा तथा ईमानदारी के साथ काम करें। आपकी हार्दिक कामना यही थी कि जिला-बोर्ड ग्रामीण जनता के लिए चरम-सीमा तक उपयोगी बन सके और अपने उद्देश्य में वह एक बड़ी सीमा तक सफल भी हुए।

चौधरी साहब की चारित्रिक पावनता, कर्तव्यमूलक निष्ठा और आचरणगत ईमानदारी का ही परिणाम था कि जब सन् 1937 में प्रांतीय-धारासभा के चुनाव हुए तो बागपत-गाजियाबाद चुनाव-क्षेत्र से कांग्रेस ने चौधरी साहब को प्रत्याशी घोषित कर दिया। यह एक विशाल चुनाव-क्षेत्र था। आजकल इस क्षेत्र को, आठ विधान-सभा-क्षेत्रों में बांट दिया गया है। इतने बड़े ग्रामीण-चुनाव-क्षेत्र से चुनाव लड़ने का साहस किसी कांग्रेस-नेता का नहीं हुआ। अंत में, अंग्रेजी-शासन

ने, एक जाट जमींदार को, इनके विरुद्ध प्रत्याशी के रूप में खड़ा कर दिया और उसको हार का मुंह देखना पड़ा था। यह चौधरी साहब की लोकप्रियता का ज्वलंत प्रमाण था।

सन् 1937 में, एम. एल. ए. बनकर लखनऊ पहुंचे चौधरी साहब की सबसे बड़ी उपलब्धि थी 'लैण्ड यूटीलाइजेशन बिल' का प्रारूप तैयार करना। इस प्रारूप की विशेषता यह थी कि भूमि के समुचित उपयोग के लिए आवश्यक यह है कि जो व्यक्ति भूमि को जोतता-बोता है, उसको ही भूमि का मालिक बना दिया जाए। लेकिन अंग्रेजों का शासन, किसान या आम आदमी के हितों की बात न सोचकर, जमींदारों, नवाबों और व्यापारियों के हितों की सोचता था। अतः चौधरी साहब के प्रारूप को, सदन के विचारार्थ पेश न होने दिया। बाद में इसी बिल के आधार पर 'जमींदारी-उन्मूलन-बिल' का प्रारूप तैयार किया गया था।

अब चौधरी साहब का व्यक्तित्व विकसित हो गया था और गाजियाबाद उनके लिए समुचित स्थान न रह गया था। अतः सन् 1939 में आप मेरठ चले आये थे। मेरठ के श्री विष्णुशरण दुबलिश देश के क्रांतिकारी आन्दोलन की देन थे। 'काकोरी-षड्यंत्र केस' में उनको काला पानी की सजा हुई थी। वहां से, वह 1938 में लौटकर मेरठ आये थे। वह भीतर और बाहर से देशभक्त थे। मेरठ आकर वह कांग्रेस के साथ जुड़ गये थे। चौधरी साहब को उनका सहयोग सदैव मिलता रहा और लखनऊ से चौधरी साहब जब भी कभी आते थे तो दुबलिश जी तथा डा. के. के. कक्कड़ से अवश्य मिलते थे। दुबलिश जी के अतिरिक्त, चौधरी साहब को, लुत्फ अली खां, कांग्रेस-कमेटी के उपाध्यक्ष का भी सहयोग निरंतर मिलता रहा।

चौधरी साहब का राजनीतिक महत्त्व बढ़ रहा था और उनकी वकालत, उसी अनुपात में पिछड़ रही थी। कारण उनका अधिकांश समय, कांग्रेस की योजनापूर्ति में लग जाया करता था। पर आपके लिए, व्यक्ति और परिवार से अधिक महत्त्व, राष्ट्र और समाज के हित का था। अनेक राजनीतिक नेताओं की तरह यह उनका नाटक नहीं, असली रूप था।

सन् 1937 में, पंडित गोविन्दबल्लभ पंत के नेतृत्व में कांग्रेस का मंत्रिमंडल बन अवश्य गया था, लेकिन अंग्रेज-अफसर और उनकी पुलिस जनता के हितों का कोई कार्य, मंत्रियों और विधायकों को, करने नहीं देती थी। पुलिस और प्रशासन के इस रवैया की शिकायत, चौधरी साहब ने सम्बंधित मंत्रियों से की,

लेकिन स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। तब चौधरी साहब ने, कांग्रेस के विधायकों के हस्ताक्षर कराके, कांग्रेस-विधायक-दल की बैठक बुलाने की मांग की। पं. गोविन्द बल्लभ पंत बैठक बुलाने से असहमत थे, पर बैठक बुलाई गयी। चौधरी साहब ने सप्रमाण तथा सारगर्भित रूप से पुलिस-प्रशासन की कार्य-प्रणाली की आलोचना की। मंत्रिमंडल के सदस्य तथा मुख्यमंत्री इनकी आलोचना से व्यथित हुए। पंत जी के बुलावे पर पंडित नेहरू वहां गये। पंडित जी ने, चौधरी साहब के तर्कों को ध्यान से सुना और समुचित कार्यवाही करने का आश्वासन भी दिया।[1] यह घटना, चौधरी साहब के निर्भीक, विचारशील, साहसी और जन-हितैषी व्यक्तित्व की परिचायक है। इससे संकेत यह भी मिलता है कि चौधरी साहब खाना-पूरी में विश्वास न करके लोक-हित के काम करने में आस्था रखते थे। उनका मार्ग कभी पूरे न होने वाले आश्वासन देना न था, वरन् लोकहित के काम करना था।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया था। चौधरी साहब भी नवम्बर 1940 के अंतिम सप्ताह में, व्यक्तिगत सत्याग्रह के दौरान गिरफ्तार किये गये थे। उनको एक वर्ष की सजा सुनाई गयी थी। पहले उनको मेरठ की सेन्ट्रल जेल में रखा गया था और तदुपरांत बरेली की जेल में भेजा गया। वहां से वह अक्टूबर 1940 में मुक्त हुए। इस बार की जेल-यात्रा के दौरान आपने भारतीय शिष्टाचार की प्रकृति पर लेखन-कार्य किया। कालान्तर में, वही कार्य 'शिष्टाचार' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है।

सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में पूरा देश आन्दोलित था। जेल जाने की लोगों में होड़ लगी थी। राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन में जेल-यात्रा को ससुराल जाना माना गया था। ऐसे समय में, चौधरी साहब जैसा कर्मठ गांधीवादी जेल कैसे न जाता? वह जेल गये। उनकी भैंस कुर्क की गयी थी। 'शिष्टाचार' नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि को, पुलिस उठाकर ले गयी थी, लेकिन वह आज ऊंचे-ऊंचे आसनों पर बैठे अनेक नेताओं के समान माफी मांग कर जेल से नहीं छूटे, वरन् वह पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के गांव-गांव जाकर आन्दोलन को सफल बनाने के प्रयासों में जुटे रहे। वह, यह कार्य भूमिगत होकर कर रहे थे। अंग्रेजी-सरकार, उनके इस कार्य से इतनी क्रुद्ध थी कि उनको 'देखते ही गोली मारने' के गुप्त आदेश दिये गये थे।[2] अनिरुद्ध पाण्डेय ने जिला मेरठ के गांव 'दाहा' की एक घटना का उल्लेख किया है। चौधरी साहब एक बड़ी भीड़ के सामने बोलते हुए आन्दोलन तीव्र करके, अंग्रेजों को भारत से भगाने का आग्रह

कर रहे थे, तभी पुलिस ने चारों ओर से सभा को घेर लिया, लेकिन श्रोताओं के तेवरों को देखकर कुछ करने का साहस न हुआ। चौधरी साहब ने अपना भाषण समाप्त किया ही था कि भीड़ ने उनको चारों ओर से अपने बीच में ले लिया और एक घोड़े पर बिठाकर कुशलतापूर्वक वहां से निकाल दिया। पुलिस देखती ही रह गयी। लेकिन बाद में, वह 23 या 24 अगस्त को गिरफ्तार किये गये। पन्द्रह महीने जेल में रहने के बाद नवम्बर 1943 में मुक्त होकर घर आये। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन में वह तीन बार जेल गए थे। उनका स्वभाव बार-बार जेल न जाकर, ग्रामीण जनता में अंग्रेज-विरोधी वातावरण पैदा करना था।

'भारत छोड़ो आन्दोलन' की तीव्रता तथा देश-व्यापी फैलाव और जन-मानस में स्वाधीनता के प्रबल ज्वार को देखकर अंग्रेज समझ गये थे कि भारत में वे अधिक समय तक शासन नहीं कर सकेंगे। 1946 के समुद्री-सेना के व्यापक आन्दोलन ने, इस विचार को और पुष्ट कर दिया था। अंग्रेज देख रहे थे कि जनता मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही है, सेना में गुप्त क्रांतिकारी संगठन सक्रिय हैं, नेवी के लोग आन्दोलन कर रहे हैं, अतः उन्होंने भारत से विदा होने का मन बना लिया था। लेकिन यहां से जाने से पहले, वे भारत को टुकड़ों में बांट देने की नीति पर चल रहे थे। भारत के दो टुकड़े करने के अलावा, वे आसाम, मणिपुर और नागालैण्ड के क्षेत्रों को हथियारों से लैस करके जनता को भारत-विरोधी मुहिम के लिए तैयार कर रहे थे।[3]

चौधरी साहब की राजनीति में जाने की सर्वप्रथम एकमात्र इच्छा यह थी कि देश के स्वाधीन होने पर पुलिस की लोकहित-विरोधी छवि को सुधारा जाए, अंग्रेजों से विरासत में पाई प्रशासनिक भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को रोका जाए, अंग्रेजों की नाजायज संतान भारतीय जमींदारों के शोषण से गरीब किसान जनता को छुटकारा दिलाया जाये, व्यापारी समाज के हर भले-बुरे तरीके से अधिकाधिक पैसा कमाने के मनोभावों को सुधारा जाए और बड़े-बड़े उद्योगपतियों पर थोड़ा अंकुश लगाकर, घरेलू अथवा लघु-उद्योगों का विकास करके देश की बहुसंख्यक जनता के लिए, रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसर जुटाये जाएं। यदि सन् 1947 से लेकर 1978 तक की समस्त घटनाओं, परिस्थितियों और राजनीतिक दलों तथा उनके नेताओं की गतिविधियों का निष्पक्ष मूल्यांकन किया जाए, तो निश्चित रूप से, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि बहुत कम नेता अपने वैयक्तिक स्वार्थों से बाहर निकल कर, राष्ट्र-निर्माण की दिशा में, कमर कसकर आगे बढ़े हैं। चौधरी साहब निश्चित रूप से इसके अपवाद थे। वह अपने प्रारंभिक राजनीतिक

जीवन से लेकर, अंतिम क्षणां तक, जनहित के लिए संघर्ष करते रहे थे। वह एक मात्र ऐसे विधायक, प्रदेश में मंत्री, मुख्यमंत्री, केन्द्र में गृह-मंत्री तथा वित्त-मंत्री और प्रधानमंत्री थे, जिसके पास देश के किसी स्थान पर न अपना कोई घर था, न कार थी, और न कहीं फार्म हाउस था। दिल्ली में रोग-ग्रसित होते समय, चौधरी साहब की पास बुक में लगभग बीस बाईस हजार रुपये थे, जिनमें से अधिकांश रुपये रोग के समय खर्च हो गये थे और शेष बचे थे सिर्फ दो-ढाई हजार रुपये। इस सच्चाई की प्रामाणिक जानकारी मुझे पूछने पर उनके दो सहयोगी कर्मचारी समरपालसिंह तथा रामअजोर सिंह ने दी थी। प्लेटो द्वारा एक राजा के जो गुण या अर्हताएं बताई गई हैं, वे चौधरी साहब पर अक्षरशः सही उतरती हैं। प्लेटो कहता है, 'मैं राजा को समस्त शक्तियां देने के लिए तैयार हूं पर धन-दौलत नहीं।' चौधरी साहब ने भी लोक-हित की दिशा में, मंत्री, मुख्यमंत्री या गृहमंत्री के रूप में मिली हुई शक्तियों का उपयोग किया था, पर धन का संचय नहीं। उनके किसान-संस्कार की यह सबसे बड़ी विशेषता थी, जो चिराग लेकर ढूंढने पर भी नहीं मिलती। आज के युग में, विधायक बनते ही लोग कार, मकान और बैंक-बैलेंस वाले बन जाते हैं, पर चौधरी साहब सन् 1937 से 1978-79 तक सत्ता में रहते हुए भी वैसे ही थे, जैसे मेरठ या गाजियाबाद में वकालत करते समय थे। वह जब केन्द्र में वित्त-मंत्री या प्रधानमंत्री थे तो कोई व्यक्ति उनसे मिलने आया था। जाते समय, वह अपना ब्रीफकेस उनके कमरे में छोड़ गया। चौधरी साहब की नजर उस पर पड़ी तो उन्होंने तुरन्त उसको बुलाकर कहा—'अरे तुम अपना ब्रीफकेस यहां भूल गये थे, इसे ले जाओ।' यह थी, उस महान् व्यक्ति की ईमानदारी। देखा यह जाता है कि लोग ऊंचे स्थानों पर बैठे हुए भी दिल के छोटे तथा दरिद्र होते हैं, लेकिन चौधरी साहब गरीब होते हुए भी राजा थे और विशाल हृदय भी। एक उद्योगपति ने, किसी के माध्यम से, उनके चुनाव-फण्ड में कुछ राशि देने का वायदा इस शर्त पर किया था कि वह उनके चुनाव-क्षेत्र में अपनी चुनाव-सभा करके उसका विरोध न करेंगे। चौधरी साहब ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसके चुनाव क्षेत्र में, अपनी चुनाव सभा की। उसके विरुद्ध धुआंधार प्रचार किया और उसको हराया भी। मुझे यह घटना, स्वर्गीय भगवानसिंह, पूर्व उच्चायुक्त, फीजी, ने सुनाई थी। उत्तर-प्रदेश के एक मुख्यमंत्री कांग्रेस के चुनाव-फण्ड के लिए खुलेआम रुपया लेते थे। भाजपा के एक नेता ने तहलका डॉट कॉम के रहस्योद्घाटन के बाद स्वीकार किया कि पार्टी के लिए दान के रूप में एक लाख रुपया मैंने लिये थे।

चौधरी साहब ने, पार्टी के नाम पर भी, व्यापारी तथा उद्योगपति से चंदा नहीं लिया। पैसे वह लेते थे, लेकिन किसानों से, वह भी मांगते न थे। किसान अपने आप, बढ़-चढ़कर उनको चंदा देते थे, क्योंकि वे जानते थे कि वह उनके सब से अधिक समर्थक तथा हितैषी हैं। बात सन् 1977 के चुनावों की है। बड़ौत के समीप एक गांव में चौधरी साहब का प्रोग्राम था। उसी ग्राम के एक सज्जन ने हमसे कहा कि अगर चौधरी साहब हमारे यहां आ जाएं तो हम उनको चंदा देंगे। मैंने कहा–'तुमने क्या चौधरी साहब को अभी तक जाना नहीं? वह हरगिज इस शर्त पर नहीं जायेंगे। यदि तुम उनको ले जाना चाहते हो तो ऐसा करो कि 100-200 की भीड़ इकट्ठी करना। वह नारा लगाते-लगाते उनके आगे चलें और तुम उनसे कहना कि चौधरी साहब कुछ महिलाएं आपके स्वागत के लिए अपने घर के बाहर खड़ी हैं। उनके हाथों में पुष्प-हार हैं और उनके घरवालों के हाथों में थाल। कृपया उनको, उनकी भेंटे स्वीकार करके, उपकृत कर दें। बात बन गयी। चौधरी साहब गये। दोनों हाथ जोड़कर महिलाओं को नमन किया, आशीर्वाद दिया और फौरन लौट पड़े। यह थी, उस व्यक्ति की शान।

उन्होंने शायद हो, कभी किसी के सामने हाथ फैलाया हो और शायद ही कभी चुनाव-फण्ड में मिले धन का दुरुपयोग किया हो। वह न कभी धन से बिके न राजनीतिक सत्ता के प्रलोभन पर। राजनीतिक गठबंधन उन्होंने भी किये थे, लेकिन उनका उद्देश्य केवल सत्ता पर जमे रहना नहीं था, वरन् सत्ता के माध्यम से, जनता का अधिकाधिक हित करना था। यही कारण है कि उनके प्रति, जनहितैषी लोगों में गहरी श्रद्धा थी। वह उन लोगों से पूरी तरह भिन्न थे जो सत्ता को अपने हितों का साधन बना लेते हैं और जनता के हितों की ओर से आंखें फेर लेते हैं पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती गांधी के गीत गाकर, वह यावज्जीवन सत्ता के आसन पर बने रह सकते थे, पर यह उनको स्वीकार न था। यही कारण है कि जन-हित विरोधी गठबंधन न आपने उत्तर-प्रदेश में किये और न केन्द्र में। उनका रास्ता, अनेक राजनीतिक नेताओं एवं दलों से भिन्न था। उसकी जड़ें राष्ट्र तथा जन-हित की भूमि में गहरी जमीं थीं। किसी प्रलोभन पर, उनको उखाड़ फैंकना, उनके स्वभाव का अंग न था। आदर्श और सिद्धान्त के निर्वाह में वह बेजोड़ थे। इस का एक जीता-जागता उदाहरण हमारे सामने है। वह उत्तर-प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में, मेरठ जनपद में दौरा कर रहे थे। यहीं, उन्होंने सुना कि उनकी सरकार को भंग कर दिया है। उसी समय उन्होंने सरकारी गाड़ी तथा साथ के लोगों को हटा दिया। हापुड़ से एक

मित्र की कार से मेरठ तक आए और मेरठ से, रेल द्वारा, लखनउ तक गए। यह था उनका चरित्र और आदर्शों का निर्वाह।

संदर्भ

1. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृ. 63
2. वही, पृ. 67
3. विस्तार के लिए पढ़िए मेजर जयपाल सिंह की आत्मकथा 'आजादी के परचम तले' और गौरव गाथा', भाग-3, संपादक डा. नत्थन सिंह, पृ. 109

सन् 1947 से 1977 तक की राजनीतिक-यात्रा के विविध पड़ाव

अगस्त सन् 1947 के बाद उत्तर-प्रदेश में, पंडित गोविन्दबल्लभ पंत के नेतृत्व में पूर्ण समर्थ मंत्रिमंडल का गठन हुआ था। चौधरी साहब को इस मंत्रिमंडल में सभा-सचिव बनाया गया था। पहले उनको माल-विभाग में रखा गया, फिर स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य-विभाग में स्थान दिया गया। स्वास्थ्य-विभाग में सचिव रहते हुए भी उनको स्वतंत्र चार्ज दिया गया था। इस प्रकार सितम्बर 1947 से मई 1948 तक आपने उक्त विभागों में सभा-सचिव के दायित्व का कुशलता के साथ निर्वाह किया। 1948 में, मुख्यमंत्री पंडित गोविन्दबल्लभ पंत ने, आपको अपने साथ सभा-सचिव बनाया और न्याय तथा सूचना विभाग में रखा। लेकिन सूचना-विभाग का स्वतंत्र चार्ज आपके पास था।

अपने विभाग के सफल संचालन का प्रमाण यह है कि अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर आक्रमण करने की पूर्व-सूचना चौधरी साहब ने प्रधानमंत्री पं. नेहरू को दे दी थी।[1] अनिरुद्ध पाण्डे कहते हैं कि 'चौधरी चरण सिंह ने बंटवारे का विरोध किया था और पं. नेहरू से स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले कहा था कि जिन्ना पाकिस्तानी फौज से कश्मीर पर हमला करायेंगे।'[2] भारत-विभाजन का विरोध, गांधी जी को पत्र लिखकर, चौधरी छोटूराम ने भी किया था।[3] इससे संकेत मिलता है कि किसान-नेता, भारत को ध्वस्त करने की अंग्रेजों की चाल को समझ गये थे, जबकि राजनीतिक लोग, सत्ता-प्राप्ति की सुखद कल्पना में संभावित विभीषिका को न देख पाये थे। वे केवल सत्ता के मोह में अंधे बन गए थे और दशकों तक देश की जनता की यथार्थ स्थिति को जान नहीं पाए थे।

चौधरी साहब का ध्यान हमेशा प्रशासनिक योग्यता, लोकहित और ईमानदार आचरण पर टिका रहता था। इसका एक प्रमाण यह है कि जनपद बुलन्दशहर की रामगढ़ रियासत को कोर्ट-ऑफ-वार्ड से अलग कराने की कोशिश की गई

थी। चौधरी साहब को, इस कार्य में, राजनीतिक भ्रष्टाचार की गंध मिली थी। फलतः आपने इस प्रश्न को बड़ी गरिमा तथा जोरदारी के साथ उठाया। बात यहां तक बढ़ी कि आपने मंत्रिमंडल से अपना त्याग-पत्र दे दिया। मुख्यमंत्री पं. पंत ने उनका त्याग-पत्र स्वीकार नहीं किया। आज, संभवतः शायद ही कोई ऐसा विभाग होगा, जो हर प्रकार के भ्रष्टाचार से मुक्त हो, और उस विभाग का मंत्री सैद्धांतिक निष्ठा के निर्वाह-हेतु त्यगा-पत्र दे देता हो।

चौधरी साहब की योग्यता, परिश्रमी प्रकृति, ईमानदार आचरण और लोकहित के प्रति निष्ठा को देखकर मुख्यमंत्री पंत जी ने सन् 1950-51 में चौधरी साहब को जमींदारी उन्मूलन विधेयक का प्रारूप तैयार करने का दायित्व सौंपा था। इसी प्रारूप को, सन् 1952 में जमींदारी-उन्मूलन-विधेयक के रूप में पारित होने का गौरव प्राप्त हुआ।

चौधरी साहब को पंत जी ने सन् 1951 में न्याय और सूचना-मंत्री बनाया और 1952 में माल-विभाग भी सौंप दिया था। जमींदारी खत्म होने से नाराज पुराने जमींदारों ने सरकार को पाठ पढ़ाने का मन बनाया और उनके द्वारा पाले-पोसे जाने वाले पटवारियों ने आन्दोलन शुरू कर दिया। इस आन्दोलन को पीछे से बढ़ावा पुराने जमींदार दे रहे थे। इन दोनों (पटवारी तथा जमींदार) की बेईमानी से भरी आदतों को, गांवों के किसान भली प्रकार जानते ही नहीं, उनसे रोजाना पीड़ित भी हो रहे थे। चौधरी साहब ने, दोनों वर्गों को पाठ पढ़ाने का इरादा कर लिया था। गरीब किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक भी था। अतः पहले तो चौधरी साहब ने, उत्तर-प्रदेश के समस्त पटवारियों से सरकारी कागजात तहसीलों में जमा करा लिये और फिर उनको सामूहिक त्याग-पत्र देने के लिए मजबूर कर दिया। पटवारियों के सामूहिक त्याग-पत्र देते ही चौधरी साहब ने उनको तुरन्त स्वीकार कर लिया। संभवतः इतनी बड़ी लगभग 26 हजार संख्या में लोगों को कभी किसी ने सेवा-मुक्त न दिया होगा। पटवारियों के त्याग-पत्र स्वीकार होने के बाद किसानों को राहत मिली और युवकों को रोजगार।

पटवारियों के स्थान पर, आपने लेखपालों की भर्ती की और इस भर्ती में 18 प्रतिशत स्थान हरिजनों के लिए आरक्षित किये। यह अकेला तथ्य इस बात का प्रमाण है कि चौधरी साहब गरीबों के हितैषी थे, गरीब किसी जाति का हो वह उनसे सहायता पाता था, उनके बाद उत्तर-प्रदेश की सरकार में कई ऐसे मंत्री और मुख्यमंत्री बने, जिन्होंने सरकारी पदों पर अपनी जाति के लोगों को ही बिठाया है। वह पद चाहे किसी भी विभाग के अन्तर्गत हो और चाहे

किसी कमीशन के। पब्लिक सर्विस कमीशन इसका उदाहरण है। आपने, अपने काल में एक गूजर जाति के, ईमानदार एवं योग्य व्यक्ति को, कमीशन का चेयरमैन बनाया था और अन्य ने अपनी ही जातियों के लोगों को कमीशन का चेयरमैन तथा सदस्य बनाया है। कमीशन के अध्यक्ष तथा सदस्यों की क्रमिक सूची के अवलोकन से, इस तथ्य की प्रामाणिकता सिद्ध हो सकती है।

किसानों के इधर-उधर बिखरे खेतों को, एक या दो स्थानों पर लाना तथा उनको चक का रूप देकर, उनके श्रम और व्यय को बचाने एवं अधिक खाद्यान्न उत्पादन के लक्ष्य से, सन् 1953 में चकबंदी-कानून बनाया गया था। इसके बनाने और कठोरतापूर्वक लागू करने में चौधरी साहब की भूमिका सर्वाधिक प्रधान थी। एक दिन बातचीत के दौरान, चौधरी साहब ने मुझे बताया कि जब वह सख्ती के साथ सन् 1954 में, उत्तर-प्रदेश के मैदानी भागों में इस कानून को लागू करा रहे थे, तब कई विधायकों, नेताओं और अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने, मुख्यमंत्री पंत जी से उनकी शिकायतें की थीं, लेकिन पंत जी ने सदैव उनका समर्थन एवं बचाव किया था, लेकिन इतनी सख्ती के साथ, जब आपने पर्वतीय क्षेत्रों में चकबंदी कानून लागू कराया तो पंतजी नाराज हो गये। चौधरी साहब के ये शब्द संकेत करते हैं कि हमारे नेताओं के सिद्धांत और आचरण में अंतर हुआ करता था। यही कारण है कि भारत आज भी गरीब, भ्रष्टाचार से पीड़ित है और राजनीतिक नेताओं के कथन और कर्म के अंतर से पिछड़ा हुआ है, और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गुलामी की ओर निरंतर बढ़ता जा रहा है।

सितम्बर 1954 में सरदार पटेल का स्वर्गवास हो गया था। उनका स्थान लेने के लिए पंत जी को गृहमंत्री के रूप में दिल्ली बुला लिया गया और डा. सम्पूर्णानन्द ने पंत जी का स्थान ले लिया। सैद्धांतिक रूप से डा. सम्पूर्णानन्द समाजवादी विचारधारा के थे। लेकिन उनके कुछ निर्णयों से संकेत मिलते हैं कि समाजवादी चेतना केवल उनके बौद्धिक आयाम का अंग थी, आचरण का विषय नहीं। उन्होंने चौधरी साहब से कृषि-मंत्रालय छीन लिया और उसके स्थान पर परिवहन विभाग दे दिया। फलतः एक योग्य, कर्मठ, ईमानदार और जनता के हितों के साथ गहराई से जुडे, मंत्री के अभाव में, कृषि-मंत्रालय, प्रदेश की बहुसंख्यक जनता का हित करने में असमर्थ हो गया।

परिवहन-विभाग के साथ-साथ पहले मिला माल-विभाग भी उनके पास रहा। अप्रैल 1958 में परिवहन विभाग उनसे लेकर उनको वित्त-विभाग दे दिया गया। इसी वर्ष वित्त-विभाग लेकर सिंचाई तथा बिजली विभाग उनको दिये गये।

विभागों के जल्दी-जल्दी बदले जाने के कारण, चौधरी साहब अपने विभाग की कार्य-प्रणाली को लोक-हित के साथ प्रतिबद्ध करने के प्रति सजग होते हुए भी यह कार्य नहीं कर पा रहे थे और केवल मंत्री बना रहना उनका अभिप्रेत न था। अतः वह त्याग-पत्र देने की बात सोचने लगे थे और 1959 में उन्होंने त्याग-पत्र दे भी दिया। त्याग-पत्र के मूल में, डा. सम्पूर्णानन्द से सैद्धांतिक मतभेद भी था। मैं कह चुका हूं कि डा. सम्पूर्णानन्द समाजवादी विचारधारा के होते हुए भी कार्य कर दिया करते थे पूंजीपतियों तथा उद्योगपति के हित में। इसका प्रमाण है कि रिहंद योजना से उत्पन्न बिजली का आधा भाग बिड़ला की मिर्जापुर स्थित एल्यूमिनियम फैक्ट्री को दे दिया गया था और वह भी उत्पादन लागत से कम मूल्य पर। इससे आम आदमी तथा किसानों को बिजली मिलने में परेशानी हुई और बिरला जी के घर में लक्ष्मी आ गयी। चौधरी साहब ने जनता के साथ होने वाले इस अन्याय पर मुख्यमंत्री सम्पूर्णानन्द का विरोध किया। एक विचारक का कथन है–All powers corrupt and absolute power corrupts absolutly यही बात, तुलसी ने भी कही है–'प्रभुता पाहि काहि मद नाहीं।' डा. सम्पूर्णानन्द ने मुख्यमंत्री की शक्ति का प्रयोग किया और चौधरी साहब का त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया।

चौधरी साहब के त्याग-पत्र पर 'नेशनल हेरोल्ड' (लखनउ) की टिप्पणी का बड़ा महत्त्व है। इससे चौधरी साहब के महत्त्व का प्रतिपादन होता है। टिप्पणी का भाग यह था–'चौधरी चरण सिंह का त्याग-पत्र व्यक्तिगत तथा संस्थागत दोनों के लिए दुखान्त है। उनका मंत्रिमंडल से बाहर निकल जाना उ. प्र. शासन के लिए बड़ी हानि की बात है। श्री सम्पूर्णानन्द ने ऐसा साथी खोया है जो योग्य, गंभीर, परिश्रम और सत्यनिष्ठा के लिए विख्यात है।'

मुख्यमंत्री का कार्य, सरकार तथा जनता के लिए अहितकर था और चौधरी साहब द्वारा मुख्यमंत्री के कार्य का विरोध, दोनों के हितों का रक्षक था। इसका प्रमाण है, 1963-64 की ऑडिट-रिपोर्ट। इस रिपोर्ट के अनुसार राज्य को 50-55 लाख की हानि प्रतिवर्ष हुई। डा. सम्पूर्णानन्द का उक्त निर्णय, उनके लिए भी हितकर सिद्ध नहीं हुआ। उनको मुख्यमंत्री के पद से हाथ धोना पड़ा। सन् 1960 में उनके स्थान पर चन्द्रभानु गुप्त मुख्यमंत्री बनाये गये। उनके द्वारा चौधरी साहब को पुनः गृह एवं कृषि-मंत्रालय देकर, मंत्रिमंडल में शामिल किया गया। लेकिन सन् 1962 में उनसे गृह-मंत्रालय ले लिया गया। अतः चौधरी साहब ने मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र दे दिया। कारण था चौधरी साहब ने 15 महीने के

अपने गृहमंत्रित्व काल में, पुलिस-विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करके उसे समाज के साथ उत्तरदायी बनाने का भागीरथ प्रयास किया था। आपने सबसे पहले एक ऐसे आई. जी. पुलिस को अवकाश पर जाने के लिए विवश कर दिया, जिसका कार्यकाल अनियमित रूप से बढ़ाया गया था। इससे पुलिस-विभाग में खलबली मच गयी। चौधरी साहब ने विभाग के अधिकारियों को आश्वासन दिया कि उनके कर्तव्य-पालन में किसी भी प्रकार का सरकारी अथवा राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होने दिया जायेगा। इससे अधिकारियों का मनोबल बढ़ा। आपने, उनसे यह आग्रह किया कि वे अपनी कार्य-प्रणाली में ईमानदारी तथा कर्तव्यपालन की भावना को विशेष स्थान देंगे और छोटे तथा बड़े के साथ समान तथा वैधानिक व्यवहार करेंगे।

कानून का राज कायम करने की दृष्टि से, आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों पर मानसरोवर सिनेमा हाल जलाने के कारण चलने वाले मुकदमे को वापस लेने से इंकार कर दिया, बलरामपुर इंटर-कालेज के छात्रों पर कानून-भंग करने के मुकदमे को भी खत्म नहीं किया गया, लखनउ के हजरतगंज चौराहे पर साइकिल पर सवार कुछ छात्रों को कानून तोड़ने के उपलक्ष्य में किये चालान को वापस नहीं होने दिया और एक मुकदमे में फंसे हमीरपुर के एक विधायक द्वारा हर प्रकार का दबाव डालने पर भी आपने मुकदमे से छुटकारा नहीं दिलाया। इसी प्रकार का व्यवहार प्रतापगढ़ के कांग्रेसी-विधायक के साथ किया। इस विधायक को बाद में कत्ल के आरोप में सजा मिली। झांसी के एक विधायक कुआं खुदवाने के बहाने सरकारी रकम को पी गये थे, उनको भी आपसे कोई राहत नहीं मिली। एक और ऐसी घटना है, जो चौधरी साहब की कानून-रक्षा के प्रति सख्ती, पुलिस कर्मचारी के सम्मान की रक्षा और दुखी तथा निस्सहाय लोगों की सहायता करने की भावना को उजागर करती है। घटना इस प्रकार है, कुछ छात्रों ने पुलिस के एक सिपाही के साथ मारपीट की थी। उनमें से एक छात्र राजपत्रित पद के लिए चुन लिया गया। नियुक्ति से पूर्व हुई जांच को हरी झंडी दिखाने के लिए चौधरी साहब के कुछ सहयोगियों ने भी सिफारिश की, लेकिन चौधरी साहब टस से मस नहीं हुए। तब छात्र की माता और उसके समीपी रोते-बिलखते चौधरी साहब से माफ करने की याचना करने लगे। बालक के भविष्य और विधवा मां के आंसुओं को धोने के लिए चौधरी साहब ने छात्र को माफ करने की एक शर्त लगा दी। शर्त यह थी कि छात्र सम्बंधित सिपाही से माफी मांगे और सिपाही उसको माफ कर दे तो बालक को छुटकारा मिल

सकता है। यह था गृहमंत्री चौधरी साहब का राजा विक्रमादित्य का सा न्याय। उनके ऐसे कठोर कदमों से, पुलिस की दैनिक कार्य-पद्धति में बदलाव आया था। पर सी. बी. गुप्त को, ऐसी ईमानदारी भी रुचिकर नहीं थी। उन्होंने चौधरी साहब की सहमति के बिना मेरठ के एक ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक का स्थानान्तरण इसलिए कर दिया कि उसने निष्पक्ष जांच कराके एक अपराधी कांग्रेसी के विरुद्ध मुकदमा कायम कर दिया था। गृहमंत्रालय से सन् 1962 में त्याग-पत्र देने का सबसे बड़ा कारण यही था।

गृहमंत्री के रूप में, उनका नियम था कि बेईमान अधिकारियों के खिलाफ कार्यवाही करते समय वह किसी की सिफारिश को सुनते न थे और न ईमानदार अधिकारी को दण्डित होने देते थे। वह पुलिस विभाग को उपादेय और कर्तव्यपरायण बनाने पर कटिबद्ध थे। विभाग को सक्षम बनाने के लिए आपने कई महत्त्वपूर्ण कदम भी उठाये थे। सबसे पहले 1961 के बजट में यह प्रावधान करने की घोषणा की थी कि कर्तव्य-पालन करते समय मुठभेड़ में मारे जाने वाले अराजपत्रित पुलिसकर्मी के उत्तराधिकारियों को मय वेतन-वृद्धि के पूरा वेतन जीवन भर मिले और पेंशन भी। दूसरे लखनऊ तथा कानपुर जैसे बड़े शहरों में रेडियो-यंत्र सहित संचालित दस्तों की स्थापना की। अन्य शहरों में भी सचल वाहनों वाले दस्ते तैनात किये गये, जिनकी सेवाएं चौबीसों घंटे उपलब्ध रहे। मुरादाबाद के निरीक्षण-भवन में तैनात पुलिसकर्मी की फटी जर्सी को शीघ्र बदलवा कर, आपने पुलिसकर्मियों में यह विश्वास पैदा कर दिया था कि वह न्यायप्रिय हैं, कर्तव्यपरायण तथा ईमानदारी के पक्षधर हैं और पुलिस को लोक-सेवक बनाने के हामी हैं। गृह-विभाग से अलग होने पर, पुलिस-विभाग की छवि फिर भ्रष्ट और जन-विरोधी होती गयी। जिसका अंत अभी तक नहीं हो पाया है। सरकारें आती हैं और चली जाती हैं, लेकिन पुलिस विभाग वहीं-की-वहीं रहता है। जनहित के लिए उसको पारदर्शी, ईमानदार, कर्मठ, कार्यकुशल और सदैव सजग रहना नितांत आवश्यक है। चौधरी साहब, इस विभाग को, इन विशेषताएं से भरा हुआ बनाने की दिशा में सजग थे। इस बात का, एक ज्वलन्त उदाहरण है कि आपने केन्द्रीय सरकार में गृहमंत्री के रूप में, दिल्ली-पुलिस को साफ-सुथरी छवि वाली तथा कार्य-कुशल बनाने के उद्देश्य से, उत्तर-प्रदेश से एक निहायत ईमानदार तथा योग्य चतुर्वेदी ब्राह्मण को पुलिस का कमिश्नर बनाया था।

संदर्भ

1. प्रो. रघुवीर सिंह गोयल, अन्याय, शोषण और भ्रष्टाचार-विरोधी योद्धा, पृ. 43
2. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृष्ठ 77
3. सर छोटूराम चिंतन और कर्म (अनुवाद : डा. नत्थन सिंह), पृ. 238

उत्तर प्रदेश के विभिन्न मंत्रालयों में चौधरी साहब की कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां

उत्तर प्रदेश के मंत्रिमण्डलों में, समय-समय पर, निश्चय ही कुछ ऐसे मंत्री आये होंगे, जिन्होंने प्रदेश के सर्वतोतुखी विकास के लिए अनेक सार्थक योजनाएं बनाई होंगी और अनेक सिद्धांतों की स्थापना भी की होगी, लेकिन ऐसा मंत्री चौधरी साहब के अलावा कोई और शायद ही आया हो, जिसने योजनाओं एवं आदर्शों को ठोस धरातल पर उतारा हो। देशी-विदेशी अनेक पत्रकारों तथा विद्वानों ने उनकी योग्यता, निष्ठा, ईमानदारी, प्रशासनिक दक्षता, सम्बंधित विभाग के उत्कर्ष की दिशा में चिंतन की मौलिकता, दूरदर्शिता, जटिलतम समस्याओं के सुलझा देने का साहस तथा कुशलता की प्रशंसा की हो। अपनी इन विशेषताओं के आधार पर, चौधरी साहब ने प्रशासन में अप्रतिम स्थान बनाया था और महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे, जिनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है–

1. लैण्ड यूटिलाइजेशन बिल का प्रारूप तैयार करना। 1937 में पहली बार एम. एल. ए. बनते ही आपने उक्त बिल का प्रारूप तैयार किया। यही प्रारूप, कालान्तर में जमींदारी उन्मूलन कानून का आधार बना। इस प्रारूप का उद्देश्य था, भूमि के जोतने-बोने वाले व्यक्ति को उसका मालिक बनाना।

2. भारत-विभाजन का विरोध करना और पंडित नेहरू से यह कहना कि जिन्ना कश्मीर पर आक्रमण कर सकते हैं।

3. जनपद बुलन्दशहर की रामगढ़ रियासत को कोर्ट ऑफ वार्ड से मुक्त कराने की योजना, जिसके पीछे राजनीतिक भ्रष्टाचार का षड्यंत्र निहित था का विरोध करना।

4. जमींदारी उन्मूलन विधेयक का प्रारूप तैयार करना और उसको पास कराके उत्तर प्रदेश के किसानों को जमींदारों के आर्थिक, मानसिक तथा सामाजिक शोषण से मुक्त कराना।

5. जमींदारों के पक्षधर और किसानों का शोषण करने वाले पटवारियों को बर्खास्त करा देना। उनके स्थान पर नियुक्त होने वाले लेखेपालों में 18 प्रतिशत हरिजनों को भर्ती कराना।

6. बुरी छवि वाले आई. जी. (पुलिस) को सेवा-निवृत्त होने के लिए विवश करना।

7. पुलिस अधिकारियों को समाज के प्रति उत्तरदायी तथा कर्तव्यनिष्ठ बनने के लिए उनके कार्य में किसी प्रकार के सरकारी तथा राजनीतिक हस्तक्षेप न करने का आश्वासन देना।

8. कानून को अपने हाथों में लेने वाले छात्रों को माफ न करना और किसी मानवीय संवेदना के स्तर पर माफ करना पड़े तो छात्र द्वारा सम्बंधित पुलिस कर्मी से क्षमा-याचना कराना और पुलिसमैन द्वारा क्षमादान देने पर ही दंड से बचाव की व्यवस्था करना।

9. छात्र-यूनियनों के परचम तले कानून-भंग करने एवं शैक्षिक-प्रक्रिया में व्यवधान डालने वालों के अवांछित कार्यों को रोकने के लिए छात्र-यूनियन को वैकल्पिक बना देना।

10. जाति के आधार पर रखे गये शिक्षा-संस्थाओं के नामों को बदलवा देना।

11. देहाती क्षेत्रों में सम्पर्क-सड़कों के निर्माण की योजना प्रस्तुत करना।

12. राज-बाहों की पटरियों पर किसानों की बोगियों के आवागमन को वैधानिक रूप दिलाना।

13. प्रधानमंत्री को इस आशय का पत्र लिखना कि नव-नियुक्त राजपत्रित अधिकारी के लिए हरिजन कन्या से विवाह करना अनिवार्य बना दिया जाए। यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया होता तो आरक्षण के विष से समाज को विशाक्त न बनना पड़ता।

14. स्थानान्तरण के सम्बंध में किसी प्रकार की सिफारिश पर ध्यान न देना।

15. व्यक्ति विशेष को लाभ पहुंचाने की अपेक्षा, समाज-हित के कामों पर ध्यान देना।

16. दुःखी, परेशान और असहायों की सहायता करना।

17. जातिवादी संकीर्णता से सदैव मुक्त रखना। योग्य, परिश्रमी और समाज के साथ निष्ठावान तथा ईमानदार व्यक्ति को ही पद पर आसीन करना। मंत्रिमंडल

के गठन के समय जाति तथा परिवार के सम्बंधों को दूर रखना और योग्य और ईमानदार को स्थान देना।

18. प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित भारतीय-कृषि-व्यवस्था के लिए अनुपयोगी सहकारिता सिद्धांत का विरोध करना।

19. हिन्दी को राजकाज के व्यवहार की भाषा बनाने को प्रश्रय देना।

20. प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के पुत्र कान्ति देसाई द्वारा, अपने आर्थिक हितों के लिए सरकारी मशीनरी के प्रयोग का विरोध करना।

21. जनता पार्टी के घटकों की दोहरी मानसिकता का विरोध करना।

22. अपने ऊपर जातिवादिता का आरोप लगाने वालों की जातीय संकीर्णता पर सप्रमाण प्रहार करना।

23. डा. सम्पूर्णानन्द के लोकहित पराङ्मुख और उद्योगपति-हितैषी कार्यों की आलोचना करना।

24. उपहार-स्वरूप मिले 75 लाख रुपये से किसान-समाज के हितपोषणार्थ, किसान-ट्रस्ट की स्थापना करना।

25. लोकहित की अवहेलना होने पर मंत्रालयों से तुरन्त त्याग-पत्र देना।

26. सत्ता को समाज और राष्ट्र के उत्कर्ष का माध्यम मानना, व्यक्ति-स्वार्थों की पूर्ति का साधन नहीं।

27. भूमि को उर्वरा तथा अधिक उपज देने वाली बनाने के लिए भूमि-संरक्षण कानून तैयार करना।

28. बाद में भूमि और जन-संरक्षण कानून का रूप उसी कानून को दिलाना।

29. समस्त किसानों को बीज, उर्वरक तथा कृषि-यंत्रों की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए कृषि-आपूर्ति-योजना तैयार करना।

30. कृषक-समाज की स्थापना करना।

31. पशु-बाजार के समुचित संचालन और नियंत्रण के लिए विधेयक तैयार करना।

32. नगर पालिकाओं के कार्यकारी अधिकारियों को ट्रांस्फर के क्षेत्र में लाना और उनका वेतन भी सरकारी कर्मचारियों के समान करा देना।

33. प्रदेश के जंगलों की अवैध कटाई को रोकने के लिए जंगलों का अधिग्रहण कराया और उनके प्रबंध की व्यवस्था जिलाधीशों को सौंपना।

34. जमींदारों द्वारा अवैध रूप से वन-विभाग की हथियाई जमीन को एक कानून बनाकर सरकार के अधीन करा देना।

35. पक्की सड़कों के दोनों ओर पेड़ लगाने की योजना प्रारम्भ कराना।

36. ऐसा वातावरण पैदा किया कि इनके गृहमंत्री बनते ही लखनऊ से पुलिस अधिकारियों ने खरीदी अथवा उपहार में ली गयी वस्तुओं की कीमतें तुरन्त दुकानदारों को दे दी।

37. पूर्वी जिलों के लिए छोटी-सिंचाई-योजनाएं प्रारम्भ करा देना।

38. जाति-प्रथा समाप्त करने के लिए भूमि-अभिलेखों में काश्तकार की जाति न लिखने का नियम बनाया।

39. ग्रामीण किसानों के श्रम, समय और धन को बचाने के लिए जिला कार्यालयों पर तैनात हाकिम-परगनों को तहसील-स्तरपर रहने का सुझाव देना।

40. देश की निरंतर बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए आपने 1956 में पहली बार जिला बस्ती में कार्यकर्ताओं के सामने विचार रखे।

41. काला-बाजार के धन के कुप्रभाव को रोकने के लिए आपके द्वारा 1966 में कालाधन के विमुद्रीकरण का सुझाव पेश करना।

42. अरुणांचल, नागालैण्ड और मिजोरम की बिगड़ती स्थिति के विषय में और उनकी विदेशी सहायता से आन्दोलनकारी शक्तियों के संभावित उत्कर्ष पर गृहमंत्री तथा प्रधानमंत्री का ध्यान आकर्षित किया।

43. जनता पर भार बने, ऑनरेरी मजिस्ट्रेटों का पद समाप्त करके भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना।

44. कृषि की उपज बढ़ाने को प्राथमिकता प्रदान करना और एतदर्थ उर्वरकों को बिक्री-कर से मुक्त करा देना।

45. राष्ट्रीयकृत बैंकों से किसान को ऋण उपलब्ध होने के लिए अधिक सुविधाएं दिलाना।

46. साढ़े तीन एकड़ जोत वाले किसानों का लगान माफ कराना। इससे आठ लाख जोतों को लाभ पहुंचाना।

47. भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को खेती-योग्य भूमि देने की योजना को पूरा करना। फलस्वरूप जून तक 6,26,338 (छह लाख छब्बीस हजार तीन सौ अड़तीस) एकड़ भूमि के सीरदारी पट्टे और 31,188 (इकतीस हजार एक सौ अठासी) एकड़ भूमि के आसामी पट्टे दिलाना।

48. सीलिंग से प्राप्त भूमि को प्रायः हरिजन मजदूरों को दिलाना।

49. कानून की प्रतिष्ठा और उसमें जन-मानस को तत्काल प्राथमिकता प्रदान करना।

50. राजनीतिक दृष्टि से किसान-वर्ग को सजग एवं सक्रिय बनाना।

51. कृषि भूमि की मिट्टी की उत्पादकता के वैज्ञानिक परीक्षण के लिए जिला एवं विकास खण्डों पर व्यवस्था कराना।

52. समस्त किसानों तक उन्नत बीज, उर्वरक तथा कृषि-यंत्रों की सुविधाएं पहुंचाने के लिए 'कृषि आपूर्ति संस्थान' की स्थापना की योजना बनाना।

53. पशु-हाटों के समुचित संचालन एवं नियंत्रण के लिए विधेयक तैयार करना।

54. गो-हत्या पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से पशु-संरक्षण विधेयक तैयार करना।

55. परिवहन विभाग में बिचौलियों का अस्तित्व समाप्त करने के उद्देश्य से, बेनामी चलने वाले ट्रकों तथा बसों को मालिकाना हक दिलाना और एक व्यक्ति को केवल एक बस का परमिट देने की परम्परा का प्रवर्तन करना।

56. 'बीस सूत्री किसान-घोषणा' पत्र का प्रसारण, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को काम पाने की गारंटी, भारतीय समाज में महिलाओं के लिए सम्मानजनक स्थान की व्यवस्था और पंचायती-राज में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने पर बल दिया गया। यहां विशेष उल्लेखनीय यह है कि पंचायती-राज में, आज महिलाओं का जो स्थान दिया गया है, उसके विचार को प्रथम रखने वाले चौधरी साहब ही थे।

57. केन्द्र में गृहमंत्री रहते पिछड़ी तथा जनजातियों के बालकों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण के प्रश्न पर सम्मतियों प्रस्तुत करने के लिए 'मण्डल आयोग' का गठन करना।

58. अल्प-संख्यकों के हित-सम्बधन-हेतु परामर्श देने के लिए 'अल्पसंख्यक आयोग' की स्थापना करना।

59. ग्रामीण बेरोजगारों के लिए 'काम के बदले अनाज' तथा 'अंत्योदय' योजनाओं का प्रारम्भ कराना।

60. चावल, चीनी, खण्डसारी आदि कृषि-उत्पादों के अन्तर-राजीय व्यापार पर लगे प्रतिबंधों को हटवाना।

61. बड़ी कपड़ा-मिलों को हिदायतें देना कि वे 20 प्रतिशत कपड़ा गरीब जनता के लिए बनाएं।

62. वित्त-मंत्री (केन्द्रीय) के रूप में बजट में कृषि-मद में पहली बार राशि की बढ़ोत्तरी कराना।

63. छोटे किसानों के हितों की रक्षा के लिए उर्वरक तथा काले डीजल की कीमत में कमी कराना।

64. प्रधानमंत्री के रूप में, पहली बार ग्रामीण पुनरुत्थान मंत्रालय की स्थापना कराना, ताकि ग्रामीण विकास की सम्भावनाएं बढ़ जायें।

65. उ. प्र. के छात्र-आन्दोलन को एक झटके से समाप्त कर देना।

कांग्रेस-नेताओं की संकीर्ण राजनीति और चौधरी साहब के नये कदम

उत्तर-प्रदेश में, आचार्य कृपलानी की धर्मपत्नी श्रीमती सुचेता कृपलानी कांग्रेस-दल की ओर से मुख्यमंत्री के आसन पर बैठीं, तो आपने चौधरी साहब को कृषि, पशुपालन तथा वन-मंत्री बनाया। बाद में स्वायत्त-शासन मंत्रालय भी दे दिया गया। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् 1968 तक चौधरी साहब को शिक्षा, सहकारिता, उद्योग, सार्वजनिक निर्माण के अतिरिक्त अन्य सभी विभागों का अनुभव हो गया था और प्रत्येक विभाग पर आपने अपने श्रम, ज्ञान, लोक-निष्ठा और ईमानदारी की छाप छोड़ दी थी। लेकिन खेद का विषय यह है कि मुख्यमंत्री पंत जी के बाद, उनके विभागों को जल्दी-जल्दी बदला गया। इसका अवश्यंभावी परिणाम यही होता कि न तो विभाग के दायित्वहीन अधिकारियों पर उनकी पकड़ मजबूत होती और न विभाग का मनोवांछित विकास होता। अस्तु, पद को जन-सेवा तथा राष्ट्र-निर्माण का साधन मानने वाले चौधरी साहब का मन, कांग्रेस की संकीर्ण व्यक्तिवादी तथा एकनिष्ठ नीति से विद्रोह कर उठा। वह अन्य लोगों की तरह न तो निष्क्रिय रहकर शासन पर भार बनने के पक्षधर थे और न अपनी क्षमता, योग्यता एवं सृजनात्मकता की उपेक्षा के। अतः आपने राष्ट्रीय आदर्शों से पराङ्मुख एवं पतनोन्मुख कांग्रेस से मुंह मोड़ने का मन बना लिया था और प्रत्येक व्यक्ति एवं परिवार-निरपेक्ष तथा समाज एवं राष्ट्र-सापेक्ष व्यक्ति का मार्ग भी यही था। बाल गंगाधर तिलक जैसा राष्ट्रवादी व्यक्ति अलग मार्ग पकड़ चुके थे। अतः चौधरी साहब के सामने भी कांग्रेस छोड़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। फिर भी उन्होंने जल्दी में कोई कदम नहीं उठाया। यद्यपि अपनी अदूरदर्शी तथा लोकहित विरोधी नीतियों के कारण, कांग्रेस-संगठन बिखराव के कगार पर खड़ा था। उसको धराशायी करने के लिए केवल एक धक्के की आवश्यकता थी।

इसी दौरान 1967 के आम-चुनाव आ गये। उत्तर-प्रदेश की विधान-सभा में कांग्रेस को 198 सीटें मिलीं और विरोधी दलों को 227। विरोधी नेताओं ने, एकमत होकर चौधरी साहब के सामने, कांग्रेस-विरोधी मंत्रिमंडल बनाने का प्रस्ताव रखा, पर उनका उत्तर स्पष्ट 'ना' में था। लेकिन जब कांग्रेस-विधायक दल के नेता के चुनाव का प्रश्न उठा तो चन्द्रभानु गुप्त के सामने अपना दावा पेश कर दिया। इस कदम का भी स्पष्ट उद्देश्य, कांग्रेस को धनपतियों की गोद में जाने से बचाना था, लेकिन श्रीमती इंदिरा गांधी, चन्द्रभानु गुप्त के उस उपकार का बदला चुकाने पर कटिबद्ध थी, जो उन्होंने मोरारजी देसाई को शांत करके श्रीमती गांधी का प्रधानमंत्री बनने का मार्ग प्रशस्त किया था। फलतः 13 मार्च, 1967 को श्रीमती गांधी प्रधानमंत्री बन गई और उन्होंने अपने दो विश्वस्त दूत—उमाशंकर दीक्षित और ठाकुर दिनेश सिंह को चौधरी साहब को समझा-बुझाकर बैठाने के लिए भेजे। चौधरी साहब ने इस शर्त पर अपना नाम वापस ले लिया था और चन्द्रभानु गुप्त का नाम नेता-पद के लिए प्रस्तावित कर दिया था कि वह भ्रष्टाचार के लिए बदनाम दो व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में शामिल नहीं करेंगे और ईमानदार छवि वाले विधायकों को स्थान देंगे। लेकिन चन्द्रभानु गुप्त ने चौधरी साहब को तो मंत्रिमंडल में स्थान दे दिया, पर न तो उन दो ईमानदार विधायकों को शामिल किया, जिनकी ओर चौधरी साहब ने संकेत किया था और न उन दो बदनाम विधायकों को मंत्रिमंडल से बाहर रखा।

चौधरी साहब ने तो कांग्रेस-दल की एकता को बनाये रखने के लिए, अपना नाम वापस लिया था, पर चन्द्रभानु गुप्त ने केवल व्यक्तिगत हित देखा। जब उनसे समझौता भंग करने की बात कही गई तो उनका तर्क था कि वह समझौते में शामिल नहीं थे। उमाशंकर दीक्षित ने 17 मार्च को तथा दिनेश सिंह ने 31 मार्च को समस्या के समाधान का वायदा किया[1], पर बाद में फोन पर दोनों ने अपनी असमर्थता का ज्ञापन कर दिया।[2] कांग्रेस के बड़े नेताओं की इस संकीर्णता और अवसरवादिता से चौधरी साहब को बड़ी ठेस लगी। इस राजनीतिक छलछिद्र से उनकी आत्मा व्यथित हो उठी थी। साथ ही, उनको विश्वास हो गया था कि कांग्रेस में अब उनके लिए कोई स्थान नहीं था। कांग्रेस के प्रति उनकी आस्था, उसके अवसरवादी सिद्धांतहीनता के सामने, जर्जर हो गई थी। जनसंघ तथा अन्य विरोधी दल, कांग्रेस को भूमिगत करने के लिए, पहले से ही प्रयत्नशील थे। उन्होंने चौधरी साहब को अपने समर्थन का आश्वासन दिया। विरोध में उठे तूफान का आभास पाकर चन्द्रभानु गुप्त ने एक बयान जारी किया—'मैं

जब तक कांग्रेस-दल का नेता हूं, कोई भी अलग होने का साहस नहीं कर सकता, जो ऐसा करेगा मैं उसे भंगी बना दूंगा।'[3] ये शब्द जले पर नमक छिड़कने के समान थे। फलतः चौधरी साहब, दूसरे दिन 1 अप्रैल, 1967 को अपने साथियों के साथ, सरकारी बैंचों से उठकर विरोध-पक्ष में जाकर बैठ गये। फलतः उसी दिन बजट का एक मामला बहुमत से अस्वीकार कर दिया गया। अस्तु, सी. बी. गुप्त की सरकार बहुमत खोकर त्याग-पत्र देने को विवश हो गयी। कांग्रेसी-क्षेत्रों में भगदड़ मच गई। चौधरी साहब को विधायक-दल का नेता बनाकर कांग्रेस की सरकार फिरसे बनाने के लिए प्रयास होने लगे, पर चौधरी साहब ने, कांग्रेस छोड़ी तो फिर उसमें गये नहीं और कांग्रेस-नेताओं की धमकियों का सामना करने के लिए सीना तानकर खड़े हो गये।

इस प्रकार अप्रैल 1967 में, भारत के सबसे बड़े राज्य, उत्तर-प्रदेश में कांग्रेस-विरोधी संविद-सरकार का गठन हो गया। इस सरकार में जन-कांग्रेस के 17, जनसंघ के 99, संसोपा के 45, साम्यवादी (मा) 1, सी. पी. आई. 14, स्वतंत्र पार्टी के 11, प्रसोपा के 11, रिपब्लिकन पार्टी के 7, निर्दलीय 16, समाजवादी 1 और हिन्दू महासभा का 1 सदस्य शामिल था। यह पहला अवसर था कि अपनी संकीर्ण परिवारवादी नीतियों के कारण, कांग्रेस-विरोधी सरकार, अस्तित्व में आई। चौधरी साहब द्वारा दी गयी यह एक ऐसी चुनौती थी, जो निरंतर प्रबलतर होती गई और कांग्रेस अपनी लोकप्रियता खोकर कई प्रांतों तथा केन्द्र से भी सत्ता से बाहर हो गई। कांग्रेस कार्यकर्ता लोकहित, जनसेवा और राष्ट्रोन्नति के सिद्धांत को भूलकर जोड़-तोड़ से सत्ता में बने रहने का प्रयास करने लगे थे, जिसको जनता ने नकार दिया था। चौधरी साहब संविद सरकार के मुख्यमंत्री बने।

चौधरी साहब के मुख्यमंत्री बनते ही जनता में खुशियों की लहर दौड़ गई। भ्रष्ट और रिश्वतखोर अधिकारियों में हड़कम्प मच गया। उनके चुनाव-क्षेत्र छपरौली में, एक सप्ताह के भीतर जिन टयूब वैलों तक बिजली का कनैक्शन नहीं पहुंचा था, वहां पहुंच गया। जिन विद्युत-खम्भों तक तार नहीं खिंचे थे, उन पर तार खिंच गये। सम्भवतः कृषि एवं किसान का कोई कार्य लटका नहीं रह गया। पूरे प्रदेश में अनुशासन तथा निर्माण की लहर दौड़ गई। आम आदमी को ऐसा लगने लगा था कि कांग्रेस ने स्वाधीनता-आन्दोलन के दौरान, स्वतंत्र भारत की जो तसवीर पेश की थी, उसे वह तो मूर्त रूप न दे सकी थी, पर संविद-सरकार अवश्य दे सकेगी। लेकिन संविद-सरकार के कुछ घटकों के मन में कुछ और

था। एक दो घटक तो ऐसे थे, जो जनता, समाज एवं राष्ट्र की सुख-समृद्धि के साथ प्रतिबद्ध न होकर, अपने दल को सबल बनाने पर जुटे थे। कुछ लोग, केवल अपनी नेतागीरी को चमकाने पर लगे थे। यही कारण है कि प्रदेश के सर्वतोमुखी विकास-हेतु उन्नीस सूत्री जो कार्यक्रम संविद-सरकार ने निश्चित किया था, वह पीछे छूट गया और व्यक्ति तथा दलीय उत्कर्ष की भावना सामने आ गयी। जनसंघ के नेता एक ओर जा रहे थे, कम्युनिस्ट पार्टी के दूसरी ओर और संसोपा के तीसरे ओर। तीनों की दृष्टि अपने-अपने अनुयायियों के हितों पर केन्द्रित थी। वे सामूहिक दायित्व भावना से दूर हटते जा रहे थे।

संकीर्ण आदर्शों से भरी खींचा-तानी में, लोकहित के साथ प्रतिबद्ध, चौधारी साहब की स्थिति बड़ी विषम होती जा रही थी। वह अन्तर मन से खिन्न अवश्य थे पर हतोत्साहित नहीं। इसी बीच प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अवसर का लाभ उठाने की नीति अपनाई। 2-3 जनवरी 1968 को उनका रायबरेली में दौरा हुआ। चौधारी साहब उनके साथ थे। संसोपा के उग्र प्रदर्शनकारियों ने प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का घेराव करना चाहा, चौधरी साहब ने लाठीचार्ज तथा आंसू गैस का प्रयोग कराके उनको रोका। बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय में भी प्रधानमंत्री का कार्यक्रम था। चौधरी साहब, प्रधानमंत्री के साथ थे। वहां भी संसोपा का उद्‌देश्य पूरा नहीं हुआ। संसोपा का ऐलान था कि केन्द्र के किसी भी मंत्री के उत्तर-प्रदेश में प्रवेश पर उसको जनता द्वारा गिरफ्तार करके, जन-अदालत में पेश किया जाएगा। चौधरी साहब जैसे अनुशासन-प्रिय मुख्यमंत्री के लिए न्यायाचार तथा नैतिकता की दृष्टि से, यह आवश्यक था कि वह प्रधानमंत्री की गरिमा को ठेस न लगने दे। इस स्थिति से बचने के लिए, आपने संसोपा कार्यकर्ताओं के साथ सख्ती से काम लिया। इस पर संसोपा के विधायक नाराज हो गये। स्थिति यहां तक बनने लगी कि जनसंघ और संसोपा दोनों ही, चौधरी साहब रहित, सरकार का स्वप्न देखने लगे। संसोप अपने दलीय हितों पर आरूढ़ थी, वामदल साढ़े छह एकड़ भूमि के लगान माफ करने, राजनीतिक कैदियों को मुक्त कराने और मजदूरों के साथ हुई अनुशासनात्मक कार्यवाही को निरस्त कराने पर तुले थे। दलीय स्वार्थों की खींचतान में अनुशासनप्रिय, ईमानदार, कर्मठ और लोकहितों के साथ प्रतिबद्ध चौधरी साहब का मन विद्रोह करने पर उतारू होने लगा। आजकल के नेताओं की तरह वह जनहित की उपेक्षा करने वाले दल और उसकी सरकार में रहना पसंद नहीं करते थे। उनके लिए सत्ता लोकहित का साधन थी, अपने हितों की रक्षा का कवच नहीं। इसी उद्‌देश्य को, अपने

साथियों तक पहुंचाने की कामना से 23 जनवरी 1968 के दिन संविद-सरकार के सदस्यों में एक पत्र प्रसारित कर अपनी व्यथा का ज्ञापन, कानून को व्यवस्था की आवश्यकता पर बल और पूर्व-निर्धारित उन्नीस सूत्री योजना की पूर्ति एवं जनहित में संकीर्ण हितों के त्याग की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया था। लेकिन उनका सम्पूर्ण आदर्श-प्रतिपादन एकांगी स्वार्थों के सामने, अरण्य-रोदन के समान निष्फल रहा। वह कठपुतली बनकर कुर्सी पर बैठे रहने वाले व्यक्ति न थे और लोकहित की अवहेलना उनको सहनीय न थी। अतः बिना किसी पूर्व सूचना के, आपने 17 अप्रैल, 1968 को त्याग-पत्र दे दिया।

इस स्थिति के लिए, संविद का कोई घटक तैयार न था। अतः सबने चौधरी साहब को मनाने के प्रयास किये, पर विफल रहे। कुछ लोगों ने, रामचन्द्र विकल को नया नेता चुन कर सरकार को बचाने का प्रयास किया, लेकिन चौधरी साहब के घटक को यह व्यवस्था स्वीकार्य न थी। वह नहीं चाहता था कि कोई ऐसा व्यक्ति मुख्यमंत्री बने, जिसमें चौधरी साहब के समान दृढ़ता, अनुभव और क्षमता का अभाव हो। तत्पश्चात् बदायूं के एक विधायक को नेता चुना गया। चौधरी साहब ने प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू करने की संस्तुति कर दी और 18 अप्रैल 1960 को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। अपने दस माह के शासनकाल में, अनेक प्रकार की खींचतान के बावजूद, चौधरी साहब ने वे काम कर दिये, जो कांग्रेस का लम्बा शासन नहीं कर पाया था। उनकी उपलब्धियों का आंकलन इस बात से होता है कि पूर्वी जिले के एक किसान ने गरज कर कहा था—'सारे राज्यों में एक-एक चरण सिंह पैदा करो। गरीबी मिट जायेगी और भ्रष्टाचार का भूत भाग जायेगा।'[4] यह बिल्कुल सही है कि यदि संविद सरकार के सब घटकों ने, चौधरी साहब की योग्यता, दक्षता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और राष्ट्र तथा समाज के प्रति निष्ठा का आदर करते हुए, उनको सहयोग दिया होता तो उत्तर प्रदेश, देश का सर्वाधिक सम्पन्न, भ्रष्टाचार-मुक्त और अनुकरणीय प्रदेश बन गया होता। लेकिन व्यक्ति और दलीय स्वार्थों ने एक स्वर्ण अवसर खो दिया, यही कारण है कि कांग्रेस के लम्बे शासन के बाद और आज भापजा के शासन में भी, अनेक वायदों के बाद भी, यह प्रदेश गरीब, भ्रष्टाचार में डूबा हुआ, चोरी-डकैती और अपहरण के काण्डों से पीड़ित तथा अनेक प्रकार के आतंकों की छाया में सांसे ले रहा है। वह विकास के स्थान पर पीछे की ओर जा रहा है। भूख से पीड़ित महिलाएं अपने शिशुओं के साथ विष खाकर प्राण दे रही हैं।

एक नये अध्याय का आरम्भ और अन्त

राष्ट्रपति शासन की समाप्ति के लिए सन् 1969 में उत्तर-प्रदेश में चुनाव हुए। चौधरी साहब, 'जन-कांग्रेस' का नाम छोड़कर 'भारतीय क्रांति दल' गठित कर चुके थे। उनकी ख्याति बढ़ चुकी थी। उनके भा. क. द. को 98 स्थान मिल गये थे। कांग्रेस ने, जोड़-तोड़ करके चन्द्रभानु गुप्त के नेतृत्व में सरकार का गठन अवश्य कर लिया था, लेकिन कांग्रेस अपने नेता के व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण टूटने की दिशा में जा रही थी। राष्ट्रपति के चुनाव ने, इस टूटन को गति प्रदान की। बात यों हुई कि मई 1969 को राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन का स्वर्गवास हो गया था। नये राष्ट्रपति के लिए कांग्रेस ने डा. नीलम संजीवा रेड्डी का नाम प्रस्तुत किया। इंदिरा जी ने समर्थन दिया। बाद में वह स्वतंत्र प्रत्याशी वी. वी. गिरि का समर्थन करने लगीं। इस पर, उनको कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। फलतः श्रीमती गांधी ने बाबू जगजीवन राम की अध्यक्षता में, नयी कांग्रेस का गठन किया। इस तरह, अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए, श्रीमती गांधी ने कांग्रेस के दो टुकड़े कर दिये। इस टूटन से, उत्तर-प्रदेश भी प्रभावित हुआ। श्रीमती गांधी की हार्दिक अभिलाषा कमलापति त्रिपाठी को उत्तर-प्रदेश की गद्दी पर आसीन करने की थी। कांग्रेस के दोनों दल, चौधरी साहब का समर्थन पाने के लिए आकाश-पाताल एक कर रहे थे। सी. बी. गुप्त की सरकार आश्वस्त थी कि बजट सत्र में वह गिर जायेगी। अतः गुप्त-समर्थक-दल और श्रीमती इंदिरा गांधी का दल, दोनों ही चौधरी साहब के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। चौधरी साहब दोनों दलों की नीति और आदर्शों से अवगत थे और दोनों को अवसरवादी नीति का समर्थक मानते थे, लेकिन प्रेसीडेण्ट के चुनाव में, अपने घटक दल के सदस्यों को दूसरा वरीयता वाला मत श्रीमती गांधी द्वारा समर्थित वी. वी. गिरि को देकर जिताने के कारण, अप्रत्यक्षतः वह इंदिरा गांधी का पक्ष सबल कर चुके थे। संभवतः इसी आधार पर, आपके मन में यह आया हो कि इस बार श्रीमती गांधी की भूमिका कुछ

रचनात्मक हो सकती है। अस्तु, उन्होंने श्रीमती गांधी की, कांग्रेस के सहयोग से उत्तर-प्रदेश में सरकार बना ली और 17 फरवरी 1970 को वह भारतीय-क्रांति दल के नेता के रूप में मुख्यमंत्री बन गये। इंदिरा कांग्रेस के 13 सदस्य उनकी सरकार में मंत्री के रूप में सम्मिलित हुए। कमलापति त्रिपाठी मंत्रिमंडल में शामिल नहीं हुए। कांग्रेस के सहयोग से मंत्रिमंडल का गठन करना, चौधरी साहब के सैद्धांतिक चिंतन का विरोधाभास था।

नई सरकार ने, नवीन उत्साह के साथ संविद-सरकार के समय निर्धारित विकास कार्यक्रम को पूरी निष्ठा के साथ कार्यान्वित करने की ओर कदम उठाने प्रारम्भ किये ही थे कि मंत्रिमंडल में शामिल कांग्रेस के मंत्रियों तथा स्वयं श्रीमती गांधी ने चौधरी साहब की खुलकर आलोचना करनी शुरू कर दी। श्रीमती गांधी ने राजाओं के प्रीवीपर्स को समाप्त करने का प्रस्ताव संसद में रखा था, चौधरी साहब के दल के सदस्यों ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिये थे। इसका कारण यह था कि उक्त प्रस्ताव से सरदार पटेल द्वारा दिया गया आश्वासन भंग होता था।

श्रीमती गांधी के कांग्रेस-साथियों को, यह आधार चौधरी साहब के विरोध के लिए समुचित प्रतीत हुआ था। यथार्थ में विरोध के मूल में, कमलापति त्रिपाठी को मुख्यमंत्री के आसन पर बिठाना था। यथार्थ में कांग्रेस-नेताओं की यह नीति बन गई थी कि वे प्रत्येक पद पर अपने अंध-समर्थकों को बिठाते थे। चौधरी साहब न तो उनके अंध-समर्थक थे और न उनके संकेतों पर नाचने वाले व्यक्ति थे। उनके सामने नेता के हितों की रक्षा करने से अधिक अहम् प्रश्न जनता के हितों की रक्षा करने का था। फलतः कांग्रेस ने स्थिति ऐसी पैदा कर दी कि विधान-सभा का सत्र प्रारम्भ न हो सके और चौधरी साहब त्याग-पत्र दे दें। चौधरी साहब ने त्याग-पत्र नहीं दिया और वह निरंतर प्रयास करते रहे कि सदन में वह अपना बहुमत सिद्ध कर दें। पर श्रीमती गांधी ने राज्यपाल से रिपोर्ट मंगाकर, एक विशेष व्यक्ति को भेजकर योरोपीय देशों की यात्रा पर गये राष्ट्रपति से हस्ताक्षर करारके 2 अक्टूबर के दिन चौधरी साहब की सरकार को भंग करा दिया और उसके स्थान पर राष्ट्रपति-शासन लागू करा दिया गया। चौधरी साहब को अपनी भूल का एहसास हो गया। मुझे पूरा विश्वास है कि चौधरी साहब ने यह भूल मुख्यमंत्री बनने के लिए नहीं की थी, वरन् उन्होंने विष का यह प्याला भी भली प्रकार सोच-समझ कर उत्तर-प्रदेश की जनता के बहुमुखी विकास को सहज बनाने के लिए पीया था।

श्रीमती इंदिरा गांधी के सामने न कोई नैतिक आदर्श था, न सामाजिक

एवं राष्ट्रीय आदर्श। उनके सामने केवल सत्ता पर बने रहना मात्र एक उद्देश्य था। अतः वह हमेशा यही चाहती रहती थीं कि प्रदेश-सरकारों के सर्वोच्च आसन पर उनकी कठपुतलियां ही बैठती रहें। लेकिन चौधरी साहब की लोकप्रियता और सामाजिक हितों के साथ गहरी प्रतिबद्धता ने उत्तर-प्रदेश में उनका यह इरादा राष्ट्रपति शासन लगने के बाद भी पूरा नहीं होने दिया। आपने संगठन-कांग्रेस के सहयोग से त्रिभुवन नारायण सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस-विरोधी सरकार का गठन करा दिया।

श्रीमती गांधी के सामने लोक-लुभावने आकर्षक नारों तथा जोड़-तोड़ के माध्यम से सत्ता में बने रहने के अतिरिक्त राष्ट्रोत्कर्ष का कोई उद्देश्य न था। अतः देश की अधिकांश जनता उनकी वास्तविकता को समझती जा रही थी। फलतः उनके विरोध में राजनीतिक दलों का गठबंधन भी अस्तित्व में आने की ओर बढ़ता जा रहा था। विरोधियों के प्रयासों को ध्वस्त करने के लिए श्रीमती गांधी ने 1971 में आम-चुनाव कराने की घोषणा करा दी और लोकसभा को भी भंग करा दिया। 'गरीबी हटाओ' का अति आकर्षक नारा लगा कर वह चुनाव तो जीत गई, पर न तो देश से गरीबी दूर हुई, न बेकारी कम हुई, न भ्रष्टाचार का दानव कमजोर पड़ा और न सत्ता पर बढ़ता पूंजीपतियों का प्रभाव ही कम हुआ। हां, उ.प्र. में वह अपने एक मोहरे को मुख्यमंत्री बनाने में सफल अवश्य हो गई। लेकिन पुलिस विभाग की समस्याओं के समाधान एवं विभाग पर नियंत्रण करने में विफल, कमलापति त्रिपाठी को, पी. ए. सी. के विद्रोह के कारण, मुख्यमंत्री-पद से त्याग-पत्र देना पड़ा और उनका स्थान लिया हेमवतीनन्दन बहुगुणा ने।

चौधरी साहब ने पुनः विरोधी-दलों को एक दल के रूप में संगठित करने का भगीरथ प्रयास किया। फलतः भारतीय-क्रांति दल, मुस्लिम मजलिस व सोशलिस्ट पार्टी ने संयुक्त रूप से फरवरी 1973 के उत्तर प्रदेश की विधानसभा का चुनाव लड़ा और उनको 107 सीटें प्राप्त हुई। इस सफलता से उत्साहित चौधरी साहब ने लोकतांत्रिक कांग्रेस, स्वतंत्र पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, लोकतांत्रिक दल और भारतीय-क्रांति-दल को एक साथ लाने में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की। विरोधी दलों में निरंतर बढ़ती एकता, देशव्यापी असंतोष, घोर भ्रष्टाचार, गरीबी का अभिशाप, असामाजिक प्रवृत्ति के विकास, छात्र-आन्दोलन और विकट महंगाई के कारण उमड़ता जनाक्रोश श्रीमती गांधी के लिए बड़ा सिरदर्द बनता जा रहा था। गुजरात में छात्र-आन्दोलन की तीव्रता देखकर उसके समर्थन में मोरारजी

देसाई ने अनशन प्रारम्भ कर दिया और देश के राजनीतिक जीवन की विषमता को देखकर जयप्रकाश नारायण ने 'समग्र क्रांति' के पक्ष में देशव्यापी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।

चौधरी साहब कांग्रेस के कुशासन का अन्त करने के पक्षधर तो अवश्य थे, पर स्वतंत्र-सत्ता की राजनीति में उनके लिए आन्दोलन, घेराव और अनुशासनविहीन प्रदर्शन ग्राह्य न थे पर 1974 के अंत और 1975 के प्रारम्भ के दिनों में आन्दोलन की राजनीति उग्र होती जा रही थी। 16 मार्च 1975 के दिन देश की समस्याओं के प्रति, जनता को जागृत करने के उद्देश्य से जयप्रकाश नारायण, चौधरी चरण सिंह, नानाजी देशमुख और प्रकाश सिंह बादल के नेतृत्व में लाखों नर-नारियों का जुलूस दिल्ली में निकला। 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' के नारों ने दिल्ली के गगन-मण्डल को भर दिया था। श्रीमती इंदिरा गांधी की लोकप्रियता पर यह कसकर प्रहार था। जो कमी थी, वह राजनारायण की याचिका के निर्णय का उनके विपक्ष में जाने से पूरी हो गई। श्रीमती गांधी संभवतः आपे से बाहर हो गई होंगी। 25 जून 1975 को रामलीला मैदान में हुई विशाल जनसभा में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने श्रीमती गांधी के त्याग-पत्र की मांग की। सत्ता को हाथ से खिसकते देख, श्रीमती इंदिरा गांधी ने, मंत्रिमंडल की पूर्व सूचना के बिना 26 जून 1975 को देश में इमरजैंसी की घोषणा कर दी। इसके साथ ही, भारतीय राजनीतिक जगत् में अमावस की काली रात का अंधकार छा गया। नेताओं को गिरफ्तार करके जेलों में बंद कर दिया गया। 26 जून की रात को ही समाचार-पत्रों को बिजली के कनैक्शन काट दिये गये। फलतः दिल्ली से कोई अखबार प्रकाशित नहीं हुआ। नेताओं की धरपकड़ जोरदारी के साथ शुरू कर दी गयी।

चौधरी साहब को तिहाड़ जेल में बंद कर दिया गया। चौधरी साहब के समीपी तथा उनकी विचारधारा से सहमत लोगों पर भी पुलिस तथा कांग्रेसियों की नजरें गढ़ी थीं। बड़ौत के जनता वैदिक कालेज के हम तीन प्रोफेसर, डा. नत्थन सिंह, डा. दिनेश चन्द्र चतुर्वेदी और प्रो. फौरन सिंह की ओर भी पुलिस की नजर थी। अतः हम तीनों ने मानसिक तनाव से मुक्त होने के लिए मेरठ के जिलाधीश श्री भोलानाथ तिवारी के सामने जाकर अनुरोध किया कि वह जांच करा लें। यदि हम लोगों की गणना अराजक तत्वों में होती है तो आप हमें गिरफ्तार कर लें। यही बात, हम लोगों ने उनको लिखकर भी दी। इस पर, जिलाधीश महोदय ने आश्वस्त होकर हमें अपना अध्यापन-कार्य करने का

परामर्श दिया। इससे सिद्ध होता है कि इमरजैंसी काल में, देश का हर स्वतंत्र विचारक, मानसिक तनाव से गुजरा था और इस दमघोंटने वाले वातावरण की समाप्ति की प्रतीक्षा कर रहा था।

जहां तक चौधरी साहब का प्रश्न है, वह तिहाड़ जेल के 'बी' क्लास के 10×16 फीट के कमरे, जिसमें न हवा के लिए स्थान था, न प्रकाश के लिए, निष्क्रिय न बैठे थे। वह चारपाई के चारों ओर घूमकर अपने घूमने की आदत को पूरा करते और एक सबल संगठन खड़ा करने की योजना पर विचार करते रहते थे। इसी योजना की पूर्ति के लिए आपने 8 फरवरी 1976 के दिन अपने अन्य साथियों सरदार प्रकाश सिंह बादल, सरदार आत्मा सिंह, जयपुर के भवानी सिंह, नानाजी देशमुख, राजमाता विजयराजे सिंधिया और पत्रकार श्री के. आर. मलकानी आदि के साथ भावी संगठन की संभावना पर विचार किया। इस विचार-विनिमय के निष्कर्ष, एक व्यक्ति से दूसरे तक और दूसरे से तीसरे तक, निरंतर गति के साथ समस्त सीमा, व्यवधान तथा सतर्कता का उल्लंघन करके मूर्तरूप धारण करने लगे। इस प्रकार वैचारिक धरातल पर एक सबल राजनीतिक गठबंधन की नींव पड़ी, जो कालान्तर में 'जनता पार्टी' के रूप में मूतरूप में प्रकट हो गयी। इस संगठन को अस्तित्व में लाने और ठोस आधार प्रदान करने में चौधरी चरण सिंह की विशेष महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। अतः तिहाड़ तेल के कमरा नं. 14 'क्लाब-बी' का ऐतिहासिक महत्त्व है।

मार्च 1976 में 'ऐमनेस्टी इन्टरनेशनल' के सुझाव पर उनको जेल से मुक्त कर दिया गया। जेल से मुक्त होने के बाद, आपने वैकल्पिक दल बनाने के उद्देश्य से एक बैठक बुलाई थी, जिसमें कांग्रेस का विकल्प तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया गया था, जिसके सदस्य थे—सर्वश्री ओ. पी. त्यागी, शांति भूषण, पी. एन. गोरे (संयोजक) और एच.एम. पटेल। 4 व 5 अप्रैल 1976 को चौधरी साहब ने भारतीय-क्रांति-दल की एक बैठक बुलाकर निश्चय किया था कि वह तथा उनके अन्य सहयोगी एक सशक्त विकल्प बनाने के लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार हैं। इसी विजय पर आगे विचार करने के लिए आपने 22 तथा 23 मई के दिन बम्बई में दूसरी बैठक बुलाई और पहली बैठक के निर्णय का अनुमोदन करा लिया। इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह एक सशक्त तथा संगठित दल बनाकर, कांग्रेस के भ्रष्टाचारपालित शासन का अंत कराके, देश में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना को संभव बनाने की दिशा में कितने सजग तथा सक्रिय थे। जिन लोगों ने, उन दिनों चौधरी साहब की

गतिशीलता और ढलती आयु में यौवन की-सी फुर्ती को देखा है, उन्हें आश्चर्य होता था। यथार्थ में कांग्रेस के परिवारमूलक कुशासन का अन्त करने के लिए उनमें गजब की फुर्ती आ गयी थी। उनके साहस और लोकतांत्रिक उद्देश्यों के प्रति गहरे लगाव का प्रमाण 23 मार्च 1976 के दिन उत्तर-प्रदेश विधान-सभा में दिया गया एक भाषण था, जिसको 'एक ऐतिहासिक सिंहनाद' का नाम दिया गया था।

इस भाषण में श्रीमती गांधी द्वारा इमरजैंसी में 60 हजार लोगों को जेल भेजने, कई बड़े नेताओं को अमानवीय कष्ट देने और लोकतांत्रिक मूल्यों की धज्जियां उड़ा देने की सख्त आलोचना विधान-सभा के पटल पर की गयी थी। ऐसा बेवाक् तथा तथ्यपूर्ण भाषण करने का साहस अनेक लोग न कर सके थे। आगरा में, एक दल के स्वयंसेवकों ने उस भाषण को अनधिकृत रूप से छाप कर लोगों को पढ़वाया था और प्रत्येक पढ़ने वाले से एक रुपया लिया था। यह तथ्य स्वयं मेरे सामने जाट-हाऊस, राजा की मंडी, आगरा में आया था। इससे संकेत यही मिलता है कि कांग्रेस-विरोधी राजनीतिक दलों ने कांग्रेस के विरोध को प्रसारित करने के लिए चौधरी साहब के उस भाषण का सहारा लिया था। कांग्रेस के कुशासन का विरोध लोकनायक जयप्रकाश नारायण तथा कुछ अन्य नेताओं ने भी किया था। लेकिन कुछ लोग तो अपने तथा अपने दल के हितों की रक्षा के लिए, ऐसा अधिक कर रहे थे; समाज में फैली गरीबी, बेकारी, भुखमरी और पिछड़ेपन की मुक्ति के लिए कम। दूसरी ओर लोकनायक एवं चौधरी साहब की स्थिति भिन्न थी। इन दोनों के सामने, अपने हितों की रक्षा का प्रश्न कम, देश की प्रगति का प्रश्न अधिक था। अन्यथा चौधरी साहब भी देसाई की चाटुकारिता करके लम्बे समय तक गृहमंत्री या वित्तमंत्री के साथ-साथ उप-प्रधानमंत्री बने रह सकते थे। सम्भव यह भी है कि ऐसा करके वह भारत की राजनीति तथा प्रशासन में अपने दल को एक महत्त्वपूर्ण स्थान तथा प्रशासन का अवसर भी दिला सकते थे, लेकिन राष्ट्रीय हितों के साथ प्रतिबद्ध एक नेता की यह जीवन-मृत्यु होती। इसके लिए चौधरी साहब तैयार न थे। वह भली प्रकार जानते थे कि किसी व्यक्ति तथा सिद्धांत की महत्ता केवल सफलता में ही नहीं होती, वरन् वह निहित होती है, उदात्त मानवीय आदर्शों तथा प्रत्येक सम-विषम परिस्थिति में उसके निवार्ह में। यही कारण है कि आज अनेक मंत्रियों, नेताओं, गृह तथा वित्त-मंत्रियों और यहां तक कि प्रधानमंत्रियों की समता में, चौधरी साहब के सिद्धांत एवं कार्य, अधिक मूल्यवान तथा प्रासंगिक हैं। उन

पर लोगों को गर्व है।

यह सत्य है कि वह लम्बे समय तक प्रदेश में मुख्यमंत्री और केन्द्र में गृहमंत्री तथा प्रधानमंत्री नहीं रहे, लेकिन थोड़े समय में ही राष्ट्रहित की दिशा में उन्होंने जो कदम उठाने प्रारंभ किए थे या जो योजनाएं बनाई थीं, उनका बड़ा महत्त्व है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है और वह पूरी तरह आश्वस्त है कि यदि वह शासन के आसन पर रहते तो अपनी योजनाओं को पूरी अवश्य कर देते। कारण वह केवल वाक्वीर न थे, कर्मवीर थे। वह बोलते कम थे लेकिन जो कुछ कहते थे, सब कुछ गमा कर भी उसको पूरा करते थे।

संदर्भ

1. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृष्ठ 99
2. वही, पृ. 99
3. वही, पृ. 100
4. वही, पृ. 108

जनता पार्टी के गठन में योगदान

सन् 1967 के माह अप्रैल तक, चौधरी साहब इस निष्कर्ष पर पहुंच गये थे कि 'कांग्रेस की नेता-मण्डली में अब कोई ऐसा आदमी नहीं रह गया है, जो गलत काम करने वाले आदमियों पर लगाम लगा सके।'[1] अतः आपने कांग्रेस को सत्ता से हटाने के लिए पहले जन-कांग्रेस नामक दल बनाया। फिर उनको 'कांग्रेस' शब्द में से भी सड़ांध आने लगी थी। अतः 'भारतीय क्रांति दल' का गठन किया। 11 नवम्बर 1967 के दिन, इंदौर में विभिन्न राज्यों के कुछ पुराने कांग्रेस तथा समाजवादी विचारधारा के कुछ विचारक, कांग्रेस-सरकार की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार-प्रियता, परिवारवाद और देश में निरंतर बढ़ती गरीबी, बेरोजगारी तथा अनुशासनहीनता से राष्ट्र को मुक्त करने के लिए, एक योजना बनाने के उद्देश्य से एकत्र हुए थे। वहीं भारतीय-क्रांति-दल बनाने की नींव पड़ी थी। चौधरी साहब के समर्थन पर महामायाा प्रसाद सिंह को दल का अध्यक्ष चुना गया था। उनके त्याग-पत्र के बाद 23 मार्च 1969 को चौधरी साहब अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

भारतीय-क्रांति-दल के बढ़ते प्रभाव को देखकर इंदिरा कांग्रेस ने प्रयास किया कि वह इंदिरा-कांग्रेस के साथ मिल जाए, लेकिन चौधरी साहब को यह प्रस्ताव लेशमात्र भी स्वीकार न था। वह तो कांग्रेस-विरोधी एक सबल संगठन को अस्तित्व में लाने का जी-तोड़ प्रयास कर रहे थे। फलस्वरूप 29 अगस्त 1974 को वह समय आ गया, जब भारतीय-क्रांति-दल, स्वतंत्र-पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (राजनारायण), उत्कल कांग्रेस (बीजू पटनायक), राष्ट्रीय लोकतांत्रिक संघ (बलराज मधोक), किसान-मजदूर-पार्टी तथा 'पंजाबी खेतीबारी यूनियन' आदि ने अपने-अपने अलग-अलग अस्तित्व को समाप्त करके भारतीय-लोक दल की स्थापना की।[2] चौधरी साहब को आम राय से दल का अध्यक्ष चुना गया। इस निर्वाचन के पीछे कारण सिर्फ एक था कि लोकनायक जयप्रकाश नारायण के साथ-साथ अन्य राजनीतिक नेताओं में चौधरी साहब ही एकमात्र ऐसे थे जो कांग्रेस का विकल्प गठित करने के लिए प्राणपण से प्रयास कर रहे थे। वह

जानते थे कि लगभग तीन दशकों के कांग्रेसी-शासन में गरीब-अमीर की खाई चौड़ी हुई है, बेकारी तथा महंगाई बढ़ी है, भ्रष्टाचार का दानव प्रबल हुआ है और भारतीय राजनीति में परिवारवाद की संभावना जोर पकड़ने लगी है। भारत के राजनीतिक क्षितिज पर एक ओर भारतीय-लोकदल के कांग्रेस-विरोधी बादल मंडराने लग गये थे, दूसरी ओर गुजरात की विधान-सभा भंग कराने का आन्दोलन, जिसको मोरारजी देसाई का आशीर्वाद प्राप्त था, इन दोनों का एक तूफान बनकर उमड़ने लगा था और तीसरी ओर जयप्रकाश नारायण समग्र-क्रांति की गर्जना कर रहे थे। गुजरात के आन्दोलन से, विधान-सभा भंग हुई और विरोधी दलों को उल्लेखनीय सफलता मिली। ऐसी स्थिति में, पुनः एक अधिक शक्तिशाली संगठन की जरूरत महसूस हो रही थी। चौधरी साहब के समस्त प्रयास उसी सशक्त संगठन को खड़ा करने की ओर केन्द्रित थे। मोरारजी देसाई ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर रखा था। उनके गिरते स्वास्थ्य तथा समस्या के हल की दिशा में खिचते समय से, दुःखी तो आम तौर पर, प्रत्येक कांग्रेस-विरोधी व्यक्ति था, लेकिन चौधारी साहब की व्यग्रता, विह्वलता और वेदना की कोई सीमा न थी। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने अपने बड़े दामाद प्रो. गुरुदत्त सोलंकी को, जो उन दिनों कालेज के मेरे विभाग में सहयोगी थे, किसी विषय पर बात करने के लिए, विट्ठल भाई पटेल हाउस, दिल्ली बुलाया था। हम दोनों वहां पहुंचे। हमें देखकर वह गद्गद् होकर कहने लगे—'मोरारजी की स्थिति बड़ी विषम है। मैं इस समय बातें करने की मानसिक स्थिति में नहीं हूं।' ये शब्द संकेत करते हैं कि उन दिनों, उनके सामने केवल प्राथमिकता एक मजबूत राजनीतिक दल का गठन और मोरारजी देसाई के उद्देश्य की सफलता थी।

मरणासन्न अवस्था में, लोकनायक जयप्रकाश नारायण को, 12 नवम्बर 1975 को जेल से पैरोल पर छोड़ दिया गया था। उनकी स्थिति यह थी कि लोगों ने पटना में उनके अंतिम संस्कार की तैयारियां करनी प्रारम्भ कर दी थीं। जे. पी. के दोनों गुर्दे खराब हो गये थे। उनको अस्पताल भेज दिया गया था और चौधरी साहब पुनः पूरे जोश के साथ संगठन बनाने पर जुट गये थे। चौधरी साहब ने इस उद्देश्य के लिए एक बैठक पूर्व-निर्मित समिति के सदस्यों की बुलाई, जिसके संयोजक एन. जी. गोरे थे और सदस्य थे सर्वश्री शांतिभूषण, ओ. पी. त्यागी और एच. एम. पटेल। समिति ने निर्णय लिया कि जे. पी. का आशीर्वाद प्राप्त करके एक दल बनाने की दिशा में बढ़ा जाए। इसी संदर्भ में 4-5 अप्रैल 1976 को चौधरी साहब ने भारतीय-लोक दल की एक बैठक बुलाई।

बैठक में निश्चय किया गया कि विकल्प का एक दल बनाने के लिए भारतीय-लोकदल अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तैयार है। इसी संदर्भ में कुछ प्रमुख नेताओं की एक बैठक बम्बई में 22-24 मई 1976 को बुलाई गई। इसमें सर्वसम्मति से एक दल बनाने का निर्णय नहीं लिया जा सका।

अब चौधरी साहब के सम्मुख एक ही रास्ता था कि वह लोकनायक के साथ सम्पर्क करें। अतः आपने, सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान जयप्रकाश जी को कराते हुए, एक दल के गठन के लिए अनुरोध किया। लोकनायक जे. पी. ने 26 मई 1976 को प्रमुख दलों के विलय की भूमिका तैयार की और जून के आखिरी दिनों में उनका एक सम्मेलन बुलाया। 30 था 31 मई 1976 के दिन भारतीय लोकदल ने अपनी कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर, लोकनायक से पुनः अनुरोध किया कि जो राजनीतिक दल अभी तक गठबंधन में शामिल नहीं हुए हैं, उन पर विलय के लिए दबाव डालें।

इसी दौरान, एक ओर तो अन्य दलों के विलय की प्रक्रिया को, चौधरी साहब गतिशील बनाने का प्रयास कर रहे थे, दूसरी ओर गुजरात की संगठन-कांग्रेस की शाखा तथा पश्चिम-बंगाल की संगठन कांग्रेस-शाखा ने बाबू भाई पटेल और प्रताप नारायण चन्दर के नेतृत्व में विलय के विरोध में प्रस्ताव पारित कर दिया। बिहार, उड़ीसा और आसाम की भी स्थिति यही थी। इससे संकेत यही मिलता है कि गुजरात, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और आसाम के नेता, अपने व्यक्ति और दल के स्वार्थों से बाहर निकलने के लिए तैयार न थे। इस तरह ये लोग इंगलैण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस के समान भारत मे दो-दलीय लोकतंत्र की स्थापना में बाधक बनते जा रहे थे। अस्तु, यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि ये लोग चौधरी साहब तथा लोकनायक के समान न तो देशभक्त थे, न सामाजिक-आर्थिक क्रांति के पक्षधर थे और न अपने स्वार्थों से ऊपर उठे थे।

इतने पर भी चौधरी साहब ने न तो हिम्मत हारी और न अपने प्रयासों में किसी प्रकार की शिथिलता ही आने दी। आपने 8 जुलाई 1976 के दिन दिल्ली में एक बैठक फिर से बुलाई। उसमें एन. जी. गोरे, ओ. पी. त्यागी, अशोक मेहता और भानु-प्रताप सिंह ने भाग लिय। यह बैठक भी किसी ठोस निर्णय पर न पहुंच सकी। बैठक में एक राय यह भी सामने आई कि अभी कई नेता जेलों में बंद हैं, उनके मतों के अभाव में विलय के प्रश्न पर अंतिम निर्णय असम्भव है। इस राय पर, चौधरी साहब का तर्क यह था कि ऐसे लोगों के मत जेलों से लिखित रूप में प्राप्त किये जा सकते हैं। उसी शाम, चौधरी साहब

ने 'दिशा-निर्देश समिति' के संयोजक श्री एन. जी. गोरे को एक पत्र लिखा। पत्र में लिखा गया था–'मैं यह बात दुहराना चाहता हूं कि समय का बहुत महत्त्व है, यद्यपि कुछ दलों के लोग इस दबाव को मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ समझते होंगे, आप उन्हें विश्वास दिलायें कि नये दल का मैं नेतृत्व किसी प्रकार स्वीकार नहीं करूंगा। जैसे ही नये दल का गठन हो जायेगा, यदि मैं स्वयं को राजनीतिक नेता होने के अयोग्य पाऊंगा, तो सदा के लिए राजनीति से सन्यास ले लूंगा। लेकिन प्रजातंत्र की सफलता के लिए कांग्रेस का प्रजातांत्रिक विकल्प बनाना आवश्यक है।'[3]

यह पत्र पुनः इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि तत्कालीन कई राजनीतिक दल व्यक्ति और दल के संकीर्ण हितों के भंवर में फंसे थे। वे उनकी सुरक्षा के प्रति सजग थे, दो-दली प्रजातांत्रिक पद्धति के प्रति उदासीन थे। लेकिन चौधरी साहब पहाड़ से टकराने का साहस और ऊसर भूमि से मीठे तथा ठंडे पानी का स्रोत निकालने का साहस रखते थे। उन्होंने धैर्य नहीं खोया और समुचित दिशा में, सुविचारित तरीके से आगे बढ़ते रहे। इसी दौरान 16 तथा 17 दिसम्बर 1977 को दिल्ली में एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। इसमें संगठन-कांग्रेस ने अपने रुख में थोड़ी-सी नर्मी प्रदर्शित करते हुए प्रस्ताव किया कि अपने दल की जनरल बॉडी में वह यह निश्चित करेंगी कि अपने ट्रस्ट तथा सम्पत्ति के विषय में क्या किया जाए? उसने, भविष्य में बनने वाले दल का नाम 'जनता-कांग्रेस' रखने का भी सुझाव दिया। इससे पूर्व, समाजवादी दल एवं जनसंघ विलय के लिए सहमति दे चुके और वे प्रस्तावित नाम से भी सहमत थे। चौधरी साहब को कांग्रेस शब्द से दुर्गन्ध आती थी। अधिकांश लोगों को जनता-कांग्रेस नाम के पीछे मोरारजी देसाई के इरादों की गंध भी आ रही थी। उनको लग रहा था कि श्री देसाई अपने अनशन का लाभ उठाना चाहते हैं। बहुत सम्भव है कि मजिस्ट्रेट रहे श्री देसाई नव-गठित दल के अध्यक्ष बनकर सरकार की कुर्सी पर पहुंचने की योजना कर रहे हों। जनता-पार्टी की सरकार के प्रधानमंत्री बन जाने से मोरारजी के इरादों का पता लग गया था। सब लोग जान गये थे किस दिशा में निर्णय लेने में देरी करने का संगठन-कांग्रेस का उद्देश्य क्या था? उसके नेता मोरारजी नेता-पद के लिए भाव-तोल कर रहे थे। चन्द्रशेखर तब तक जेल में थे और वह मोरारजी को सम्भवतः पसंद न करते, यह शंका भी थी जो मोरारजी को दुःखी कर रही थी और जोड़-तोड़ के रास्ते पर ले जा रही थी।

चौधरी साहब ने 16 जनवरी 1977 को लोकनायक को एक पत्र लिखकर

पुनः अनुरोध किया। उन्होंने लिखा था–'नये दल का गठन हो सकेगा, यह विश्वास जनता को हम नहीं दे पा रहे हैं। संगठन-कांग्रेस वाले रोड़ा अटका रहे हैं। यदि वह सहमत भी हो जायं, तो फरवरी गुजर जायेगी, जबकि आम-चुनाव सम्भावित है। अतः दल का गठन चुनाव से पूर्व हो जाना आवश्यक है, क्योंकि चुनाव घोषणा के बाद का वह प्रभाव नहीं बन पायेगा, जो पहले बनने से होगा।'[4]

श्रीमती गांधी ने, आपातकालीन समय में अपने प्रभाव को बढ़ाने का भरसक प्रयास किया था। उनके अंधभक्तों ने ऐसी योजना बनाई कि सैकड़ों लोग उनसे मिलने आने लगे। पुराने समाजवादी तथा जनता-वैदिक-कालेज, बड़ौत के राजनीतिशास्त्र विभाग के एक लेक्चरार महोदय ने, अपने साथियों को भी उनके दर्शन करने की प्रेरणा दी और वह 20-21 व्यक्तियों को लेकर 1 सफदरजंग रोड पर गये भी। श्रीमती गांधी ने दो-तीन मिनट तक एक कक्ष में बातें कीं। बातों के दौरान उन्होंने कहा था–'जब आप मेरे पास आ गये हैं तो मुझे अब कहीं जाने की जरूरत नहीं है।' वहां देखने को मिला कि दक्षिणी-प्रदेशों से आये श्वेत वस्त्रधारी तथा त्रिपुण लगाये कई लोग (सम्भवतः ब्राह्मण) सस्वर मंत्रों का उच्चारण करते हुए इंदिरा जी की आरती उतार रहे थे। इस विषम आडम्बर पर लोग आंसू भी बहा रहे थे और कुछ गर्व में झूम भी रहे थे। अतीत का सामंतवादी युग आंखों के सामाने था। जब राजा या महाराजा की पूजा होती थी और प्रजा भूख से तड़पती थी और राजा के विरोधी कोलुहुओं में कुचले जा रहे होते थे और उसके चाटुकार वैभव में डूबे रहते थे।

अपने प्रति एक वर्ग विशेष की जनता तथा कतिपय बुद्धिजीवियों की सहानुभूति भले ही वह दिखावे की रही हो, को देखकर अपनी विजय का अवसर सोच कर श्रीमती गांधी ने, 18 जनवरी 1977 को आम-चुनावों की घोषणा करा दी। फलतः 19 जनवरी को मोरारजी देसाई भी जेल से बाहर आ गये। अतः विलय की प्रक्रिया अधिक तेज हो गयी। पीलू मोदी, जो चौधरी साहब की विलय के प्रश्न पर बड़ी सहायता कर रहे थे, मोरारजी से मिलने उनके निवास पर गये। मोरारजी ने उनसे जो शब्द कहे थे, वे उनकी मानसिकता को प्रकट करते हैं। उन्होंने कहा था–'अच्छा हुआ चुनाव घोषित हो गया, विलय के पाप से बच गये।'[5] कितनी बड़ी विडम्बना है कि जो व्यक्ति विलय को पाप कह रहा था, वही विलय के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई जनता-पार्टी की सरकार के प्रधानमंत्री बने। अस्तु, उसका परिणाम तो बुरा होना ही था। लोकनायक की समग्र-क्रांति और देश का यह दुर्भाग्य था कि जनता-पार्टी का प्रधानमंत्री एक

ऐसा व्यक्ति बना, जिसको यहां की भूखी-नंगी जनता से कोई सहानुभूति न थी और वह कभी अपने व्यक्ति-स्वार्थों से बाहर निकला भी न था। मोरारजी के शब्दों पर चौधरी साहब की प्रतिक्रिया थी, 'विलय हमारा एक सूत्री कार्यक्रम है, कोई मोर्चाबंदी नहीं होगी।'[6]

उसी रात मोरारजी के दिल्ली निवास 5-डुप्ले रोड पर प्रमुख दलों के नेताओं की एक बैठक हुई। उसमें चौधरी साहब के अलावा श्री अटल बिहारी वाजपेयी, सुरेन्द्र मोहन, पीलू मोदी, नानाजी देशमुख, एन. जी. गोरे और अशोक मेहता शामिल हुए थे। बैठक की अध्यक्षता स्वयं मोरारजी ने की। आपने मोर्चा बनाने पर बल दिया, लेकिन एन. जी. गोरे तथा चौधरी साहब ने जोरदार शब्दों में विलय का विचार रखा। इस पर, मोरारजी ने, सौदेबाजी की और वह नयी पार्टी के अध्यक्ष पद के लिए अड़ गये।[7] वह टस से मस होने के लिए तैयार न थे। उनकी दृष्टि वैकल्पिक दल के अध्यक्ष पद पर कम और प्रधानमंत्री पद पर अधिक थी। वह सौदा करने में प्रवीण थे ही। उनकी दृष्टि, सौदे के सुखद परिणाम पर अधिक, कांग्रेस को हराकर देश को सच्चा लोकतंत्र देने पर कम थी। दूसरी ओर गोरे, पीलू मोदी, अशोक मेहता, एम. जी. पटेल और चौधरी साहब की दृष्टि केवल राष्ट्रहित और जनता के लिए सच्ची स्वाधीनता पर टिकी थी। वे नहीं चाहते थे कि एकता का प्रश्न बीच में ही खत्म हो जाये। अतः मोरारजी की अधिक आयु को देखकर जे.पी. ने फैसला उनके पक्ष में कर दिया और चौधरी साहब को उपाध्यक्ष घोषित कर दिया। साथ ही उत्तर-भारत के बड़े भाग पर चौधरी साहब का गहरा प्रभाव देखकर प्रत्याशियों के चयन और रणनीति के निर्धारण का अधिकार उनको सौंप दिया। राष्ट्र-हित और लोक-कल्याण को दृष्टि में रखकर, भारतीय लोकदल तथा चौधरी साहब ने, पुनः महान् त्याग का अनुपमेय परिचय दिया। इसका उदाहरण मोरारजी भाई जैसों के चरित्र में न था।

लोकनायक की धारणा थी कि यदि एक दल अस्तित्व में नहीं आता, तो वह चुनाव प्रचार नहीं करेंगे। इस स्थिति में चौधरी साहब ने भारतीय लोकदल को जे. पी. के निर्णय के पक्ष में तैयार कर लिया। इस प्रकार चौधरी साहब का एक दल बनाने का स्वप्न जे. पी. की मदद से साकार हो गया। मोरारजी के निवास पर 23 जनवरी 1977 के दिन 'जनता पार्टी' के गठन की विधिवत् घोषणा कर दी गयी। चुनाव का वातावरण गर्मा गया। जो दल, कांग्रेस-नेताओं के राजनीतिक स्वांग से अलगावित होकर निष्क्रिय बैठे थे, वे भी नवगठित दल के साथ आ गये। लेकिन चुनाव-आयोग ने नवगठित जनता-पार्टी को मान्यता

प्रदान न की। अतः भारतीय लोकदल के नामांकन-पत्र, सदस्यता तथा झंडे पर ही चुनाव लड़ा गया। निश्चय ही भारतीय लोकदल और उसके सर्व-स्वीकार नेता, चौधरी चरणसिंह का यह ऐतिहासिक महत्त्व था।

चुनाव प्रचार में चौधरी साहब ने कई स्थानों पर जे. पी. के साथ और अनेक बार अकेले चुनाव प्रचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में केवल एक सीट कांग्रेस को मिली थी और वह भी किसी व्यापारी या व्यापारी मनोवृत्ति के नेता को नहीं, वरन् कांग्रेस के एक किसान नेता स्व. नाथूराम मिर्धा को नागौर (राजस्थान) से प्राप्त हुई। चुनाव में कांग्रेस का सफाया हो गया था, पर देश में अभी गरीबी, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, अनुशासनहीनता तथा व्यक्ति-पूजा बाकी थी। लेकिन मोरारजी देसाई जैसे सिंडीकेटी नेता के नेतृत्व में इनका अंत होगा, इसकी संभावना कम थी। फिर भी विवशतावश लोकनायक के निर्णय के सामने सबको सिर झुकाना पड़ा था। इस प्रकार कुशासन, परिवारवाद, आडम्बर, जनता के सामने रखे गये झूठे आश्वासन देने वाली सरकार और उसके नेताओं को देश की क्रांतिकारी जनता ने नकार कर भारत के नव-निर्माण को जो अवसर दिया था, वह मोरारजी जैसे नेताओं के उभर कर आने पर धूमिल हो गया। एक महान् क्रांति, अस्तित्व में आते ही अंत की ओर जाने लगी थी। निश्चय ही, यह इस देश की जनता का दुर्भाग्य था जिसको सौभाग्य में बदलने के अनेक सत्य-असत्य प्रयास किये गये हैं, लेकिन वह हिमालय की तरह सिर उठाये आज भी खड़ा है। इस देश के अधिकांश लोगों की मान्यता है कि लोकनायक ने प्रधानमंत्री बनाने के लिए अधिक आयु को मानदण्ड न बनाया होता और इसके स्थान पर जन-कल्याण की लगन तथा प्रतिबद्धता को महत्त्व दिया होता तो निश्चय ही यह पद चौधरी साहब को मिला होता। उस स्थिति में, देश से भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता और गरीबी का दानव कूंच कर गया होता और भारत दुनिया के चार-पांच देशों के बीच अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुका होता।

इंडियन-नेशनल-कांग्रेस की किसान-मजदूर तथा बहुसंख्यक समाज विरोधी तथा भू-स्वामी एवं साहूकार समर्थक नीति से भली प्रकार अवगत और समाजवाद के साथ प्रतिबद्ध, लोकनायक के इस निर्णय पर, देशभक्त विचारक आज भी दुःखी हैं।

संदर्भ

1. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृ. 124
2. वही, पृ. 125
3. वही, पृ. 128
4. वही, पृ. 128-129
5. वही, पृ. 129
6. वही, पृ. 129
7. वही, पृ. 129

जनता-पार्टी सरकार का आदि और अन्त

कांग्रेस-सरकार की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विफलताओं से क्षुब्ध और आपातकालीन उत्पीड़न से बुरी तरह पीड़ित उत्तर-भारत की जनता ने, 'जनता पार्टी' की लोकसभा के चुनाव मं बहुमत प्रदान किया और कांग्रेस को नकार दिया था। अतः जनता-पार्टी के प्रमुख नेताओं एवं सांसदों ने 26 मार्च 1977 के दिन, महात्मा-गांधी की समाधि 'राजघाट' पर, इस बात की शपथ ली थी कि वे किसी भी हालत में, जनता पार्टी को टूटने नहीं देंगे। डा. राममनोहर लोहिया अस्पताल में भर्ती होने के कारण चौधरी साहब, शपथ-ग्रहण-समारोह में शामिल न हो सके थे। उनकी बीमारी का कारण था, जेल से मुक्त होते ही वैकल्पिक दल के गठन और बाद में जनता-पार्टी की ऐतिहासिक जीत को सुनिश्चित बनाने के लिए रात-दिन की दौड़-धूप।

26 मार्च 1977 के दिन ही, संसदीय दल के नेता का निर्वाचन भी होना था। सभी लोगों ने आपसी खींच-तान से बचने के लिए, नेता के चयन का दायित्व, लोकनायक जयप्रकाश नारायण और जे. पी. कृपलानी को सौंप दिया था। उनके सामने तीन विकल्प थे—पहला आयु में बड़े और पंडित नेहरू के साथ मंत्रालय में रहे मोरारजी देसाई का, दूसरा विकल्प था चुनाव की घोषणा होते ही कांग्रेस को छोड़कर जनता-पार्टी में शामिल होने वाले बाबू जगजीवन राम का और तीसरा विकल्प था, जनता-पार्टी के गठन की प्रक्रिया में महान् योगदान देने वाले और उत्तर-भारत से कांग्रेस का सफाया करके, जनता-पार्टी को अभूतपूर्व जीत दिलाने वाले, चौधरी चरण सिंह का। मुझे अनिरुद्ध पाण्डेय के इस मत से असहमत होने के लिए कोई ठोस प्रमाण या तर्क नहीं मिलता कि यदि सांसदों के गोपनीय मतदान से नेता का निर्वाचन होता तो निश्चय ही चौधरी साहब को नेता चुना जाता।[1] लेकिन मोरारजी का दोनों की अपेक्षा आयु में बड़ा होना, जगजीवन राम पर आपातकाल लागू करने का प्रस्ताव रखने का आरोप होना तीसरे चौधरी साहब की ओर से नेता के चयन के लिए किसी

प्रकार का दबाव न डालना अथवा अपने पक्ष मे प्रचार न कराना, मोरारजी के भाग्योदय का परिणाम हुआ। लेकिन यह स्वयं ही, नई उभरी जनता-पार्टी तथा राष्ट्र के दुर्भाग्य का श्रीगणेश भी था।

राष्ट्रीय-हितों से अलगावित एवं जनता के भाग्योदय से उपेक्षित, व्यक्ति को, प्रधानमंत्री के आसन पर बिठा देना, सच्चे अर्थों में देश का दुर्भाग्य था। जनान्दोलन के दो गणमान्य नेताओं द्वारा, गुजरात के छात्र-आन्दोलन के समर्थन और अपने अनशन की मुहिम में सफलतापूर्वक विजयी हुए मोरारजी को, कांग्रेस-शासन से अभिशप्त, भारत के आदमी के सामने, नई प्रगति एवं विकास की स्थिति पैदा करने में समर्थ मानकर, वही भूल कर दी गयी थी, जो महात्मा गांधी ने पंडित नेहरू के सिर पर ताज रखकर की थी। मोरारजी देसाई की समता में, पंडित नेहरू तो निश्चय ही अधिक श्रेष्ठ विचारक, मानव-इतिहास के उत्कृष्ट विद्वान्, भारतीय संस्कृति के अनन्य पक्षधर और विचारक एवं दार्शनिक अधिक थे, पर अपने लोक-कल्याण विषयक विचारों को ठोस रूप देने में सक्षम कम थे। इसके लिए उनके पास समय भी न था। मोरारजी के पास, पंडित नेहरू की एक भी विशेषता न थी। वह न तो देशभक्त विचारक थे, और न गरीबों के शुभचिंतक थे। चौधरी चरणसिंह में भारत के गरीबों की समस्याओं को समझने और उनके निराकरण का ज्ञान भी था और शक्ति भी। उनके ये गुण न तो पंडित जी में थे, न मोरारजी देसाई में। यही कारण है कि पंडित जी न तो भारत की सैकड़ों वर्गमील भूमि को पाकिस्तान तथा चीन के कब्जे में जाने से रोक सके, न कश्मीर की समस्या का समाधान कर सके, न देश से गरीबी, बेरोजगारी तथा भ्रष्टाचार को मिटाने में सफल हो सके। विश्व को आर्थिक गुलामी में जकड़ने वाले और संसार के मनुष्यों को आर्थिक तथा तानाशाही से मुक्त कराने वाले राष्ट्रों की प्रतिद्वद्विता से हाल में स्वाधीन होने वाले राष्ट्रों के अस्तित्व को बचाने के लिए, तटस्थतावादी आन्दोलन को जन्म देने तथा उसको सशक्त बनाने में पं. नेहरू का विशेष योगदान तो अवश्य था, पर इससे भारत के भूखे तथा नंगे लोगों को न रोटी मिली, न कपड़े और न सर्दी, गर्मी तथा बरसात से बचने के लिए घर। यदि उनके स्थान पर, सरदार पटेल जैसे योजना-कुशल और कल्पना को मूर्त रूप देने में सक्षम व्यक्ति को, भारत का भाग्य-विधाता बनाया होता तो हमारा भारत निश्चय ही, हम से बाद में स्वाधीन होने वाले राष्ट्रों से कहीं अधिक सशक्त होता। आज हम परामुखापेक्षी हैं। हमारी सामरिक शक्ति या तो रूस की सहायता पर और आर्थिक सम्पन्नता अमेरिका पर निर्भर

करती है। स्वाधीनता के पांच दशक पूरे होने के बाद भी, हम आत्मनिर्भर इसलिए नहीं हुए कि प्रधानमंत्री की कुर्सी पर देश की अधिकांश जनता का कोई प्रतिनिधि नहीं बैठा सका। जे. पी. और आचार्य कृपलानी द्वारा मोरारजी के पक्ष में निर्णय, देश की समृद्धि के मार्ग में, दूसरा व्यवधान सिद्ध हुआ। यही नहीं, यह निर्णय कांग्रेस के एकाधिकार को चुनौती देने वाली जनता पार्टी की जड़ों में घुन लगाने वाला भी सिद्ध हुआ। खेद है कि महात्मा गांधी यदि यह समझने में भूल कर गये कि देश की शक्ति एवं समृद्धि, दर्शन, विचार और कल्पना की उड़ान में निहित नहीं होती, तो लोकनायक एवं कृपलानी जैसे कर्मठ नेता यह समझने में भूल कर गये कि उद्योग और व्यापार-समर्थक व्यक्ति देश को गरीबी, बेकारी और भ्रष्टाचार से मुक्त कैसे कर सकेगा? जनता पार्टी का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य था, जिसने जनता पार्टी को भी मिटा दिया और राष्ट्र की बागडोर भी कांग्रेस को सौंपने की भूमिका तैयार कर दी थी।

26 मार्च 1977 को जनता-पार्टी की सरकार ने कार्यभार संभाल लिया था। प्रधानमंत्री बनते ही, मोरारजी देसाई ने चौधरी साहब के उपकार से उऋण होने के उद्देश्य से उनको गृह-मंत्रालय सौंप दिया और वरिष्ठता सूची में दूसरा स्थान भी दिया। चौधरी साहब का उपकार यह था कि दोनों नेताओं (लोकनायक और आचार्य कृपलानी) ने, जगजीवन राम एवं मोरारजी के विषय में उनका मत जानना चाहा था, तो आपने मोरारजी का समर्थन किया था और जगजीवन राम का समर्थन इसलिए नहीं किया था कि श्रीमती इंदिरा गांधी के संकेत पर, उन्होंने ही इमरजैंसी का प्रस्ताव रखा था। चौधरी साहब में, इतनी शालीनता, निस्पृहता और देशभक्ति अवश्य थी कि जनता पार्टी के निर्माण और उसको लोकसभा में अभूतपूर्व सफलता दिलाने के बाद भी वह स्वयं को प्रधानमंत्री पद का दावेदार घोषित नहीं कर सकते थे। मोरारजी और उनके व्यक्तित्व का यह अंतर था। एक आत्मकेन्द्रित था, दूसरा लोक तथा राष्ट्र के साथ प्रतिवृद्ध।

प्रधानमंत्री बनते ही मोरारजी ने अपनी अड़ियलपन की शैली को फिर अपना लिया। उनका बहम् इतना प्रबल हो गया था कि दिशा-निर्देश के लिए उन्होंने क्रांति के संवाहक लोकनायक से मिलना अथवा परामर्श करना भी उचित न समझा। किंग बनकर, वह किंग-मेकर से अलग हटकर, पारिवारिक कूटनीति के समर्थक बन गये। उनके अहम्, प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण और पुत्र-मोह ने उनको इस सीमा तक संकीर्णता के गर्त में धकेल दिया कि वह जनता की आकांक्षाओं, बदले समय की समस्याओं और भिन्न परिस्थितियों की प्राथमिकताओं

को समझने एवं देखने में भी विफल रहे। मंत्रिमंडल के गठन में भी उन्होंने सामयिक दूरदर्शिता का नहीं, वरन् दलीत संकीर्णता का परिचय दिया। इसका प्रमाण है कि आपने अपनी पुरानी पार्टी 'संगठन कांग्रेस' से सात व्यक्तियों को मंत्री बनाया और इंदिरा-कांग्रेस-विरोधी आन्दोलन के सफल संवाहक भारतीय लोकदल तथा जनसंघ से केवल तीन-तीन व्यक्ति मंत्रिमंडल में शामिल किये गये। यह अनुपात, उनकी संकीर्णता का ज्वलंत उदाहरण है। वह यह भी भूल गये थे कि वह अपने दल की संख्या अथवा सफलता पर प्रधानमंत्री नहीं बने थे, वरन् अन्य दलों के कठोर संघर्ष तथा विजय के परिणामस्वरूप उनको प्रधानमंत्री का पद मिला था। अतः यह उनका नैतिक दायित्व था कि अन्य सहयोगी दलों और उनके अनुयायियों की भावना का भी ध्यान रखते। लेकिन उनमें, इस नैतिकता अथवा लोकतांत्रिक जीवन-मूल्यों का बड़ा अभाव था। उनका परिवारवाद एवं अहम् जनता पार्टी में विघटन का एक कारण बनता जा रहा था, और पुत्र-मोह में अंधी बनी उनकी आंखें यथार्थ को देखने में असमर्थ रहीं।

जनता पार्टी के बिखराव के लिए दूसरा कारण सिद्ध हुआ श्री चन्द्रशेखर का पार्टी-अध्यक्ष बनना। इसकी प्रक्रिया में भी चौधरी साहब को पीछे धकेलने की योजना बनाई गयी थी। चौधरी साहब पीलू मोदी अथवा कर्पूरी ठाकुर में से किसी को अध्यक्ष बनाने के पक्षधर थे। मोरारजी इससे असहमत थे। बहुत सम्भव है कि उनकी दृष्टि अपने किसी अन्य व्यक्ति पर टिकी हो। ऐसा अनुमान करके, चौधरी साहब के संकेत पर, राजनारायण ने अपने पुराने समाजवादी साथी चन्द्रशेखर का नाम पार्टी-अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित कर दिया। अतः वह कार्यवाहक अध्यक्ष चुन लिये गये। कांग्रेस में रहते समय, चन्द्रशेखर जी ने युवा-तुर्क होने का गौरव अवश्य अर्जित किया था और लोकसभा के चुनाव में, जनता पार्टी के मंच से, धुआंधार प्रचार भी किया था, लेकिन उत्तर-भारत में चुनाव के समय कांग्रेस के गढ़ को तोड़ने में उनको उतना श्रेय नहीं मिल सका था, जितना चौधरी साहब को प्राप्त हुआ था। फिर भी विधान-सभाओं के चुनावों में, उनका आचरण उसी प्रकार का रहा जैसा गांधीजी का रहता था। गांधीजी की मर्जी के अभाव में, कोई व्यक्ति कांग्रेस का अध्यक्ष नही बन पाता था और अगर बन भी जाता था तो बना नहीं रह सकता था। इसी तरह चन्द्रशेखर जी का भी प्रयास यही रहा कि उनकी सहमति के अभाव में कोई निर्णय न होने पाये। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार गठन के पश्चात्, उत्तर-प्रदेश की विधानसभा के लिए प्रत्याशियों की सूची में सुना गया था कि उन्होंने अपने अध्यक्षीय अधिकारों

का प्रयोग जमकर किया था। अतः यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि प्रधानमंत्री तथा पार्टी अध्यक्ष दोनों ही की राहें पृथक्-पृथक् थीं। उनमें जनता पार्टी को सशक्त बनाने का विचार कम और अपने अहम् की संतुष्टि अधिक थी। इन दोनों से थोड़ा अलग मार्ग जनसंघ का था। सत्ता के आसन तक पहुंचने के लिए उसने जनता-पार्टी में विलय तो कर लिया था, पर दोहरी निष्ठा का त्याग नहीं किया। उसके नेता अपने संगठन को शक्तिशाली, प्रभावी तथा लोकप्रिय बनाने के लिए अधिक सजग थे। इसी का परिणाम था कि आठ प्रदेशों के विधानसभा चुनावों में, जनता-पार्टी को बहुमत मिलने पर जनसंघ ने मध्य-प्रदेश, हिमाचल और राजस्थान में अपने दल के मुख्यमंत्री बनाने पर बल दिया और ऐसा हुआ भी। फलतः हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, उड़ीसा और बिहार में भारतीय लोकदल के नेता मुख्यमंत्री बने। यह बंटवारा जनता-पार्टी की एकता पर दूसरा आघात था। पहला आघात, स्वयं प्रधानमंत्री ने 'संगठन-कांग्रेस' के अधिक लोगों को केन्द्रीय मंत्रिमंडल में स्थान देकर किया था। यदि पार्टी विशेष के बहुमत पर प्रान्तों में सरकारें न बनाकर, जनता-पार्टी को एक घटक मानकर सरकारें बनाई गई होतीं, तो एकता को बढ़ावा मिलता, दलगत खींचतान का खात्मा होता और विकास कार्य के प्रति निष्ठा होती। साथ ही, अमेरिका तथा ब्रिटेन की तरह दो दलीय लोक-तंत्र की ओर देश बढ़ता और मिली जुली सरकार बनाने का अवसर न आता।

जनता-पार्टी की एकता को तीसरा झटका देने का काम भी पार्टी के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने ही किया था। अपनी लम्बी विदेश-यात्रा पर जाते समय, आपने पूरा चार्ज दूसरे नम्बर के व्यक्ति चौधरी चरण सिंह को न देकर, तीसरे नम्बर के बाबू जगजीवन राम को दिया था। इससे चौधरी साहब के मन में गांठ पड़ना नितांत स्वाभाविक था। उनकी दृष्टि में—अधिकारों का यह मात्र विभाजन ही न था, वरन् 'जनता पार्टी' के घटकों में प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न करने की एक सुविचारित चाल थी। इसके मूल में अन्य घटकों को कमजोर करना और स्वयं को शक्तिशाली बनाने का भाव छिपा था।

जनता पार्टी को चौथा झटका भी मोरारजी ने ही दिया। विदेश-यात्रा से लौटने के बाद हवाई अड्डे पर स्वागतार्थ आये स्वास्थ्य-मंत्री राजनारायण को सरेआम फटकार लगाकर यह झटका दिया गया था। यदि राजनारायण ने कोई अपराध या अशिष्ट आचरण किया था, तो उनसे शालीनतापूर्वक जवाब मांगा जा सकता था। लेकिन इस शालीनता का प्रयोग नहीं किया गया। बात यहीं

तक न रही। मोरारजी ने चौधरी-साहब के एक वक्तव्य को पढ़कर, आत्मचिंतन तो किया नहीं, उलटे गर्म हो गये। उनका अहम् चरमसीमा पर पहुंच चुका था। यदि वह शांत होकर आत्मचिंतन करते और यह खोजते कि उनसे कहां और किस क्षेत्र में शिथिलता हुई है, जिससे चौधरी साहब ने यह बयान दिया है तो वह चौधरी साहब से त्याग-पत्र मांग कर जनता-पार्टी की एकता को पांचवां झटका न देते। इस झटके का एक कारण कांति देसाई द्वारा प्रधानमंत्री की सरकारी यात्रा के दौरान, अपने व्यापारिक हितों की बढ़ोत्तरी के प्रयासों पर पर्दा डालना भी हो सकता था। यदि 11 मार्च के दिन चौधरी साहब द्वारा कांति देसाई के भ्रष्टाचार की बात कहने पर, मोरारजी भाई ने विधिवत् जांच कराने की दिशा में कदम उठाया होता, तो इससे उनकी गरिमा और ईमानदारी की छाप जनता पर पड़ती, पर पुत्र-मोह में वह बरस पड़े थे चौधरी साहब पर। उन्होंने यह नहीं सोचा कि उनका यह कदम, जनतापार्टी के लिए अहितकारी भी सकता है। साथ ही देश के लोकतंत्र के लिए हानिकारक भी।

अपने अहंकार की प्रचंडता और पुत्र-मोह की अधिकता में मोरारजी ने ऐसे व्यक्ति को छोड़ कर अपमानित कर दिया था, जिसका देश की बहुसंख्यक एवं किसान-जनता पर बड़ा अधिक प्रभाव था। अतः इसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। मधु-लिमये ने, जनता पार्टी के विघटन की स्थिति को भांप कर, प्रधानमंत्री से आग्रह किया था कि चौधरी साहब को मंत्रिमंडल में पुनः वापस लिया जाए। अटल-बिहारी वाजपेयी ने उनका समर्थन किया था। संगठन-कांग्रेस चौधरी साहब की वापसी का विरोध कर रही थी। तब हरियाणा के मुख्यमंत्री और प्रभावशाली किसान-नेता चौधरी देवीलाल ने 17 जुलाई 1978 के दिन दिल्ली में एक विशाल किसान-रैली के आयोजन की घोषणा कर दी। उधर चौधरी साहब के समर्थन में चार कनिष्ठ मंत्रियों ने त्याग-पत्र दे दिये। लेकिन बाबू जगजीवन राम और हेमवतीनंदन बहुगुणा प्रधानमंत्री के समर्थन में खड़े थे। यद्यपि चौधरी साहब ने जनता पार्टी न छोड़ने की घोषणा कर दी थी, फिर भी तनाव बढ़ता जा रहा था। अतः चौधरी साहब के समर्थन में होने वाली रैली की घोषणा से सर्वश्री मधु लिमये, एम. एम. जोशी जैसे प्रतिबद्ध नेताओं को परेशानी इसलिए हुई थी कि किसान-समाज का आक्रोश जनता-पार्टी को छिन्न-भिन्न कर सकता था। उधर चौधरी साहब ने भी पहले दलों को पुनर्जीवित करके एक संघीय दल बनाने का सुझाव दिया। जनता-पार्टी के लिए वह खतरे की एक घंटी थी। अस्तु एस. एम. जोशी के अनुरोध पर, लोकनायक जयप्रकाश नारायण जी ने एक

बयान दिया कि एक नया संघीय दल बनाने का विचार राष्ट्रीय विकल्प बनाने के प्रयासों को खत्म करना होगा। साथ ही, उन्होंने प्रधानमंत्री को चौधरी साहब को पुनः मंत्रिमंडल में लेने के लिए लिखा[2]। लेकिन मोरारजी तैयार नहीं हुए।

लोकनायक की चिंता को समझते हुए, चौधरी साहब ने संघीय दल बनाने का विचार तो छोड़ दिया, लेकिन संसद में 22 दिसम्बर 1978 के दिन अपने त्याग-पत्र से सम्बंधित बयान दे दिया, जिसमें कहा गया था कि उन्होंने 11 मार्च के दिन कान्ति देसाई की जांच का मामला एक पत्र में उठाया था, तभी से प्रधानमंत्री उन्हें मंत्रिमंडल से बाहर करने का मौका ढूंढ रहे थे।[3] अपने बयान में आपने यह भी कहा कि जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप, श्रीमती गांधी के खिलाफ तत्परता से कार्यवाही नहीं की गयी।[4]

प्रधानमंत्री के कार्यकलापों पर यह कड़ा प्रहार था। दूसरे, अगले दिन ही 23 दिसम्बर 1978 को बोट-क्लब पर, चौधरी साहब के जन्मदिन पर एक विशाल किसान-रैली हुई, जिसने बड़े-बड़ों की नींद हराम कर दी। दिल्ली से प्रकाशित 'फोर्टनाईट' पत्रिका की रैली विषय टिप्पणी थी–'It is the higgest rally of its kind in recent memory, and it gives birth to what could well be a vital organised newforce in India's body politics.'

हाल ही याददास्त में यह अपने आप में एक सबसे बड़ी रैली थी, यह रैली इस बात को उजागर करती है कि भारत की राजनीति में यह एक नई संगठित-शक्ति है। चण्डीगढ़ से प्रकाशित 'दैनिक ट्रिब्यून' का मत था–'यह विश्व की सबसे बड़ी रैली थी–world's higgest Rally[5]

विश्व की सर्वाधिक विशाल किसान-रैली में श्री रविराय ने 'गांधीवादी अर्थनीति' का एक 'किसान घोषणा पत्र' प्रस्तावित किया था, जिसका समर्थन श्री एस. एन. मिश्रा ने किया था। उस किसान-मैनीफेस्टो के कुछ विचार इस प्रकार थे–'The tendency to exploit the rural sector has gained a new momentum and the present weaith and the social advancement of a few people in the country side cannot hide the faet that the vast mejority of the Indian rural population have suffered set back at their economic status... we the kisan of India from kashmir to Kanya kumari and from Dwarika to Kamakhya hail the inspiring vision of a new social order given by chaudhary charan Singh and are determined to organise our full capacity for a direct attack on mass poverty through rural mobisation on a scale which will make our

movement a glorious chapter in the history of mankind.'

देहाती क्षेत्र के शोषण की प्रवृत्ति अधिक बढ़ती जा रही है और इस क्षेत्र में थोड़े से लोगों की वैयक्तिक सम्पत्ति तथा सामाजिक विकास इस सच्चाई पर पर्दा नहीं डाल सकता कि भारत की ग्रामीण जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग के आर्थिक स्तर को जबर्दस्त आघात पहुंचा है। इसलिए कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तथा द्वारका से लेकर कामख्या तक के समस्त भारतीय किसान चौधरी चरणसिंह द्वारा नयी सामाजिक संरचना सम्बंधी अत्यंत प्रेरणादायक दर्शन का स्वागत करते हैं और हम इस बात के लिए कमर कस कर तैयार हैं कि देश के समस्त ग्रामीणों को संगठित करके देहात में फैली व्यापक गरीबी पर इस प्रकार कसकर प्रहार किया जाए कि हमारा आन्दोलन मानव-इतिहास का एक गौरवशाली अध्याय बन जाए।[6]

ऐतिहासिक महत्त्व के उस किसान मैनीफेस्टो के विषय में, हुड्डा साहब ने बीस प्रमुख बातें गिनाई हैं। ये इस प्रकार हैं–1. जनता पार्टी की आर्थिक नीति को कार्यान्वित करना, 2. उद्योग एवं कृषि के बीच वर्तमान असंतुलन का निवारण, 3. कृषि की आवश्यकताओं के अनुरूप आयात-निर्यात नीति का निर्धारण, 4. किसानों को प्रतिनिधित्व दिया जाए, 5. कृषि-सम्बंधी निवेश कम मूल्य पर हो, 6, 1/25 हेक्टेयर से कम भूमि कर-मुक्त रहे, 7. प्रतिरोधक भण्डार रहें और उससे समर्थन-मूल्य बनाया रखा जाए, 8. एक्साइज कर को हटाया जाए, 9. योजना की रचना, नीचे के स्तर के लोगों को ध्यान में रखकर की जाए, 10. ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के लोगों की आमदनी में अधिक अंतर न हो और अन्तर का अनुपात 1 से 5 तक ही रहे, 11. सामुदायिक विकास-खंडों द्वारा किसानों की वास्तविक सेवा होनी चाहिए, 12. प्रत्येक जनपद में कृषि-पॉलिटिकनीक संस्थाओं की स्थापना हो, 13. किसान बैंकों की स्थापना की जाए, 14. पंचायत-राज में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व रहे, 15. कृषि पर लागत-योजना व्यय का 20 प्रतिशत बजट सिंचाई के लिए रखा जाए, 16. ग्रामीण क्षेत्रों को 50 प्रतिशत अतिरिक्त बिजली दी जाए, 17. भूमि सुधारों को लागू किया जाए, 18. प्रत्येक व्यक्ति को काम पाने की गारंटी दी जाए, 19. आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण से लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण किया जाए और 20. ग्रामीण समाज में महिलाओं के लिए सम्मानजनक स्थान की व्यवस्था की जाए।

'किसान-घोषणा-पत्र' के इन बीस सूत्रों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत

की बहुसंख्यक जनता, चंद लोगों के आर्थिक तथा सामाजिक शोषण से मुक्त होना चाहती थी, सामुदायिक विकासखण्ड के अधिकारियों को जन-सेवक का दर्जा देना पसंद करती थी, अफसर बनना नहीं; कृषि-उत्पादों की कीमतें लागत के अनुपात में समुचित रूप से निर्धारित करने के पक्ष में थी, महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाना चाहाती थी, पंचायती राज-व्यवस्था के अन्तर्गत, प्रत्येक जनपद में उनकी समुचित भागीदारी देखना पसंद करती थी और औद्योगिक तथा कृषि-क्षेत्र में निरंतर बढ़ते पूंज़ीगत अन्तर को घटाकर उसमें समुचित अनुपात लाना चाहती थी। वह इस सच्चाई से भी बहुत अच्छी तरह अवगत थी कि चौधरी चरण सिंह ने, इन उद्‌देश्यों को पूर्णता प्रदान करने के लिए उत्तर-भारत में, जिसके वह चुनाव-इंजार्च थे, जनता पार्टी को अभूतपूर्व सफलता दिलाई थी। जनता-पार्टी की सरकार बनवाने में, उन्होंने जिस त्याग और राष्ट्र-हित का परिचय दिया था, उससे भी जनता भली प्रकार परिचित थी।

संदर्भ

1. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृ. 131
2. वही, पृ. 142
3. वही
4. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ दि मैसेज, पृष्ठ 35
5. वही, पृ. 36
6. वही, पृ. 35

केन्द्र की जनता-पार्टी सरकार तथा उसके प्रधानमंत्री की नीतियों से मोह-भंग

ग्रामीण जनता की अधिक मिली वोटों से, केन्द्र में बनी जनता पार्टी की सरकार ने शहरी एवं ग्रामीण जनता के बीच लम्बे समय से चले आ रहे आर्थिक एवं शैक्षिक अन्तर को मिटाने की दिशा में न तो कोई महत्त्वपूर्ण योजना बनाई और न इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाया। भारतीय लोक-दल के मतदाताओं की मांग थी कि कृषि-उत्पादों एवं उसकी आवश्यकता की वस्तु की कीमतों में समानता हो, ताकि किसानों के लिए व्यापार अधिक अनुकूल बन सके और अपनी मांग की पूर्ति वे शीघ्र चाहते थे। यही नहीं, वे इस बात के लिए पूरी तरह कमर कसे हुए थे कि जनता की गरीबी को दूर करने के लिए, देश के आम आदमी को इस हद तक संगठित किया जाए कि उनका आन्दोलन ऐतिहासिक महत्त्व का सिद्ध हो सके। ये किसान, भारत में सच्चे लोकतंत्र की रक्षा के लिए भी कटिबद्ध थे और लोकतंत्र के नाम पर नेतातंत्र अथवा प्रशासन-तंत्र को खत्म करना चाहते थे। वे मानने लगे थे कि नेता और प्रशासन का छोटे से लेकर बड़ा अधिकारी, जन-समस्याओं को हल करने वाला बन जाए, न कि उन पर रौब चलाने वाला अधिकारी। जनता पार्टी की सरकार से उनकी अपेक्षा यह भी थी कि कृषि-क्षेत्र के विकास, सिंचाई के साधनों की बढ़ोत्तरी, देहाती-क्षेत्रों में पक्की सड़कों के निर्माण, अधिकाधिक नलकूपों, बांधों, पुलों, मालगोदामों, शीतगृहों, छोटे घरेलू उद्योगों, दुग्धशालाओं, मत्स्य पालन और ग्रामीण क्षेत्रों के विद्युतीकरण के लिए अधिकाधिक संसाधन उपलब्ध कराये जायें। उनकी हार्दिक इच्छा यह भी थी कि प्रशासन-तंत्र में फैले भ्रष्टाचार को समाप्त किया जाए और प्रत्येक स्तर के व्यक्ति के जीवन और माल की रक्षा की जाए।

लेकिन 26 मार्च 1977 के दिन, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की समाधि पर देशभक्ति और जन-कल्याण की शपथ लेने के बाद भी जनता-पार्टी की सरकार

के उच्च पदाधिकारियों ने, अपने रवैये में कोई बदलाव नहीं किया, वे किसी भी सीमा तक अपने अहं और दलीय स्वार्थों की सीमा से बाहर न निकले और ऐसे जोड़तोड़ में समय और शक्ति लगाने लगे, जिससे ग्रामीण जनता के बढ़ते प्रभाव और दबाव को कम किया जा सके। इस दशा में आम-जनता के प्रतिनिधियों का, जनता पार्टी तथा उसके प्रधानमंत्री की नीतियों तथा कार्यों से मोह-भंग होना स्वाभाविक था। इसकी शुरूआत हो गयी तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री राजनारायण के वक्तव्यों तथा कार्यों से।

श्री राजनारायण, डा. राममनोहर लोहिया की समाजवादी नीति, जिसका मूल उद्देश्य आर्थिक-समता, सामाजिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, देश का बहुमुखी विकास और रोजमर्रा के कार्यों में भ्रष्टाचार का निवारण के प्रति आस्थावान थे, और जनता पार्टी की सरकार की इस उद्देश्य के प्रति उपेक्षा से, वह भी चौधरी साहब की तरह दुःखी थे। शिमला की एक रिज पर, अपने भाषण में उन्होंने उच्च-पदों पर बैठे जनता पार्टी के नेताओं द्वारा उक्त उद्देश्यों की उपेक्षा पर कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। दूसरी ओर, चौधरी साहब भी स्वयं को मौन नहीं रख पा रहे थे। मोरारजी देसाई चाहते थे कि उनके मंत्रिमंडल का कोई भी सदस्य अथवा जनता-पार्टी का कोई कार्यकर्ता ऐसी बात न कहे, जिससे सरकार के काम-काज की आलोचना होती हो। पहले कहा जा चुका है कि उनके काम करने का तरीका तानाशाही था। यदि उनके दिमाग में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति जरा भी निष्ठा होती तो वह अपने साथियों की एक बैठक बुलाकर, उनकी चिंताओं से परिचित हो सकते थे, लेकिन वह प्रजातांत्रिक इस पद्धति के अभ्यस्त थे ही नहीं। वह अपने प्रति व्यक्त असंतोष से इतने क्रोधित हुए कि विदेश-यात्रा से लौटते समय हवाई अड्डे पर उनके स्वागतार्थ आये राजनारायण पर, सबके सामने बरस पड़े। उनका हिटलरशाही वाला यह तरीका न तो राजनारायण को पसंद आया और न चौधरी साहब को और न दोनों ही प्रशंसक भीड़ों को।

घर आने के बाद, उन्होंने चौधरी साहब से जवाब मांगा। उनको चाहिए तो यह था कि वह राजनारायण से ही उनके वक्तव्य के विषय में पूछते। चौधरी साहब ने दो पंक्तियों के अपने पत्र में मंत्रिमंडल से अपना त्याग-पत्र लिखकर उनके पास भेज दिया। चौधरी साहब की सहिष्णुता, नियम-परिपालन, दलीय नैतिकता और जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व की यह पराकाष्ठा थी। इस विस्फोट के सूत्र, केन्द्र में जनता-पार्टी की सरकार बनने के बाद, विधान-सभा के चुनावों के लिए प्रत्याशी-चयन की प्रक्रिया के समय, पार्टी अध्यक्ष चन्द्रशेखर

के कार्य और अन्य प्रकार के दूसरे निर्णयों में भी निहित थे। उदाहरण के लिए केन्द्र के संकेत पर भारतीय-लोक-दल के उत्तर-प्रदेश के मुख्यमंत्री रामनरेश यादव और बिहार के मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर को हटा दिया गया था। दूसरे चौधरी साहब द्वारा की गयी पहल पर भी, जनता पार्लियामेन्टरी बोर्ड द्वारा, पार्टी अध्यक्ष चन्द्रशेखर तथा राजस्थान के भाजपा के मुख्यमंत्री द्वारा बिहार तथा राजस्थान से आफीसियल प्रत्याशियों को राज्यसभा के चुनावों में पराजित कराने वाली कपटपूर्ण योजना की जांच-रिपोर्ट कभी प्रस्तुत नहीं की गयी। तीसरे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए पैनल के छह सदस्यों में पुरानी कांग्रेस (ओ) के दो सदस्य रखे गये, जिसको 425 स्थानों में से केवल 10 स्थान प्राप्त हुए थे और जिसके नेता की सिक्योरिटी भी जब्त हो गई थी, जबकि भारतीय लोकदल का केवल एक सदस्य पैनल में रखा गया था।[1] चौथे, राजनारायण को असत्य आरोपों पर जून 1978 को मंत्रिमंडल से बाहर कर दिया गया।[2] पांचवे तदर्थ-राज्य-समिति (Ad-hoc-state committee) में जिसका गठन पार्टी-अध्यक्ष ने 1977 में किया था, पुराने भारतीय लोकदल (बी. के. डी.) को अन्य दलों के अनुपात में समुचित स्थान नहीं दिया गया और छठे जनसंघ के 100 सदस्यों तथा चन्द्रशेखर के समर्थकों ने, उत्तर-प्रदेश की जनता-पार्टी सरकार के खिलाफ एक वित्त बिल पर विरोध में मत दिये थे। फिर भी उनके विपरीत कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की गयी।[3]

उपर्युक्त छह बिन्दु ऐसे हैं, जो यह संकेत करते हैं कि कांग्रेस (ओ), चन्द्रशेखर के अनुयायी और जनसंघ के कुछ लोग, किसी भावी योजना के तहत, किसान तथा गरीब जनता के समर्थक लोगों को पीछे धकेल कर, जनता के उस क्रांतिकारी कार्य को विफल करना चाहते थो, जो उन्होंने कांग्रेस की लोक-विरोधी एवं प्रतिक्रियावादी सरकार को हराकर, नये युग की शुरूआत करके आगे बढ़ाया था।

बम्बई से प्रकाशित 'ब्लिट्ज' (साप्ताहिक) में 4 अगस्त 1979 को प्रकाशित साक्षात्कार में चौधरी साहब ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि '9 जुलाई से लेकर 24 जून तक मैंने निरंतर लोकनायक के सामने उस वक्तव्य के उन अंशों की खुले तौर पर भर्त्सना की थी, जिनसे जनता-पार्टी की छवि बिगड़ती थी।[4] इतने पर भी, चौधरी साहब से जवाब मांगा गया। जिस व्यक्ति ने उत्तर-भारत में सर्वाधिक मत दिलाकर जनता पार्टी की जीत सुनिश्चित कराई थी, जिसने जगजीवन राम की समता में मोरारजी देसाई के नाम का प्रधानमंत्री पद के लिए समर्थन इसलिए किया था कि बाबू जगजीवन राम ने ही आपातकाल का प्रस्ताव रखा

था और जिसके अनुयायी ने औरों के मुकाबले में, जनता पार्टी के कार्यकारी अध्यक्ष-पद के लिए, चन्द्रशेखर का नाम प्रस्तावित किया था, उसी व्यक्ति के मनोबल को तोड़ने के लिए उससे जवाब तलब किया गया। उसको अपमानित करने का प्रयास किया गया। इसके पीछे पदों पर बैठे नेताओं के वैयक्तिक स्वार्थ थे। उनको देश की संघर्षशील जनता की बहबूदी की अपेक्षा अपना अहम् अधिक प्रिय था। फलतः उनकी कुचालों के कारण, एक ऐतिहासिक विजय, विघटन की ओर जाने लगी थी। उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और पंजाब के किसान यह अनुभव करने लगे थे कि उनके प्रिय नेता को विशेष नीति के अन्तर्गत अपमानित तथा जलील किया जा रहा है।

राजनारायण का व्याख्यान तो बहाना बन गया था। यथार्थ में 23 दिसम्बर, 1978 को किसान-रैली को देखकर उद्योगपतियों के पक्षधर नेताओं के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी थी। फलतः उसके नेता को अपमानित करके, उसका जोश ठंडा करने की योजना का अंग था, जवाब मांगना।

अवसरवादी, चतुर और सत्ता के साथ लग कर अपने दल का भविष्य उज्ज्वल करने की योजना में लगे, राजनीतिक नेताओं ने जनता-पार्टी के विघटन का दोष, राजनारायण और चौधरी साहब के ऊपर डालकर, अपना दामन साफ रखने का प्रचार किया। अनिरुद्ध पाण्डेय इतना ही कहते हैं—'चौधरी साहब की इतनी ही चूक मानी जा सकती है कि उन्होंने राजनारायण और श्री मधु लिमये को नियंत्रित नहीं किया।'[5] यद्यपि श्री पाण्डेय ने आगे स्पष्टीकरण देते हुए यह भी कहा है कि—'लेकिन क्या वे उन्हें नियंत्रित कर भी सकते थे।'[6] निश्चय ही दोनों को वक्तव्य देने से रोकना किसी के वश की बात न थी। दोनों भीतर तथा बाहर से समाजवाद के साथ प्रतिबद्ध थे और वे देख रहे थे कि जनता पार्टी की सरकार, खुलेआम जनमत की भावना से दूर होती जा रही है। कुछ राजनीतिक दल, मोरारजी की नाव पर सवार होकर जन-विद्रोह के सागर को पार करने के मोह में डूबे थे। वे यह भूल गये थे कि उन्होंने राजघाट पर गांधीजी की समाधि के सामने जनता के दुःख-दर्द मिटाने की शपथ ली थी। इन्होंने तत्कालीन अखबारों में छपी खबरों, वित्त विभाग के अधिकारियों द्वारा पी. एन. बालासुब्रह्मण्यम के दफ्तर पर मारे छापों तथा कान्ति देसाई के साथ उसके सम्बंधों से जनता सरकार की ओर जाने वाले संकेतों की भी उपेक्षा कर दी। स्वयं मोरारजी अपने दामन को पाक-साफ सिद्ध करने के लिए कान्ति देसाई तथा पी. एन. सुब्रह्मण्यम के सम्बंधों की विधिवत् जांच करा देते तो उनकी

ओर ऊंगली उठाने वालों को मौन होना पड़ता। इसके अभाव में उन लोगों को निराशा हुई जो जनता पार्टी की सरकार से पारदर्शिता, लोकहित और गरीबी-निवारण की आशा लगाये बैठे थे। इसके विपरीत, प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने 26 जून 1979 की अपनी प्रेस कांफ्रेंस में जो राजनारायण के त्याग-पत्र के सम्बंध में बुलाई गई थी, यह कह दिया कि 'यदि पहले बी. के. डी. के अन्य सदस्य भी जनता पार्टी छोड़कर जाना चाहते हैं, तो वे भी ऐसा कर सकते हैं, इससे मेरी सरकार के स्थायित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।'[7] यह कथन जले पर नमक छिड़कने के समान था। ऐसी स्थिति में कोई भी स्वाभिमानी तथा जनता के हितों के साथ जुड़ा व्यक्ति ऐसी सरकार में बना नहीं रह सकता था।

चौधरी साहब और उनकी विचारधारा के नेता देख रहे थे कि पूरे देश में हरिजनों पर होने वाले अत्याचार बढ़ते जा रहे थे, कानून का शिकंजा ढीला होता जा रहा था, जनता पार्टी में अन्तरकलह बढ़ता जा रहा था, जिन लोगों ने देहात के विकास, कृषक-समाज के बेकारों को काम देने के वायदे और देश को गांधीवादी अर्थनीति देने के नाम पर, चुनावों में ऐतिहासिक विजय पाई थी, उनका मोरारजी देसाई की सरकार से मोहभंग होता जा रहा था। वे स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि 'किसान-मैनीफेस्टो' के विचारों को जमीन में दफनाया जा है। अतः वे सब समुचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

यह अवसर हाथ लगा, राजनारायण के कार्य से। 'प्रधानमंत्री से कुपित पी. एन. सुब्रह्मण्यम ने वकीलों के परामर्श पर, एक शपथ-पत्र दाखिल किया था। उस शपथ-पत्र का टेप हुआ था[8]।' राजनारायण ने उस टेप की प्रतिलिपियां और दस्तावेजों के फोटोस्टेट जनता तथा विरोधी दलों के प्रमुखों के पास पहुंचा दिये। उसमें जर्मनी की एक कम्पनी से प्राप्त दस्तावेज भी थे। इससे विरोधी दलों तथा वित्त-मंत्रालय में हंगामा मच गया[9]। चौधरी साहब ने टेप तथा दस्तावेज मोरारजी के पास भेज दिये। प्रधानमंत्री ने उन पर समुचित कार्यवाही करने का आदेश देकर लौटा दिये।[10]

बाला सुब्रह्मण्यम के बयान और दस्तावेजों से प्रधानमंत्री का वह बयान झूठा पड़ जाता था, जो उन्होंने कई बार दिया था कि कांति देसाई कोई व्यापार नहीं करते।[11] जबकि सत्य इसके विपरीत था। कांति देसाई पहले भी 'बॉम्बे इंडस्ट्री' और 'कैमिकल कम्पनी' के नाम से व्यापार कर चुके थे।[12] उसके साथ बालासुब्रह्मण्यम के परस्पर सम्बंध थे, पर सम्भवतः देसाई (मोरारजी) इस तथ्य से अवगत न थे, पर उनकी अनविज्ञता उनके निर्लिप्त होने का प्रमाण प्रस्तुत

नहीं करती। दूसरी ओर सत्य यह भी है कि बाला सुब्रह्मण्यम विदेश-यात्रा के समय मोरारजी देसाई तथा कांति देसाई के साथ था और वह 'प्रधानमंत्री के सामान' का लेबिल अपने ट्रंकों पर लगाकर कुछ ऐसे दूर-संचरण के अति आधुनिक उपकरण भारत लाया था, जो बिना सरकारी स्वीकृति के देश में आ नहीं सकते थे।[13]

बाला सुब्रह्मण्यम के टेप तथा दस्तावेजों से मोरारजी देसाई की कार्यशैली को लेकर विरोधी दलों को मौका हाथ लग गया था। फलतः उन्होंने मोरारजी तथा समाजवादी पार्टी के सदस्यों के बीच पैदा हुए संघर्ष का लाभ उठाने का मन बना लिया और श्री वाई. बी. चह्वाण, जो विरोधी-दल के सदन में नेता थे, ने देसाई मंत्रिमंडल के विरुद्ध, अविश्वास का प्रस्ताव लोकसभा को भेज दिया। उसी दिन राजनारायण ने नया जनता-दल (एस) बनाने की घोषणा कर दी। अनिरुद्ध पाण्डेय की धारणा है कि राजनारायण की इस योजना के प्रति चौधरी साहब की सहमति का कोई प्रमाण नहीं मिलता।[14] श्री पाण्डेय का मत है कि राजनारायण के समीपी लोग जिनका सम्बंध पहले लोहिया-दल के साथ था और बाद में जो भा. लो. दल. में शामिल हो गये थे, उसको छोड़कर जनता (एस) में आ गये और इस तरह जनता दल (एस) के सदस्यों की संख्या 25 हो गयी थी।[15] उस अवस्था में मधु लिमये के साथ हेमवतीनन्दन बहुगुणा भी सक्रिय हो गये। वह चाहते थे कि जनसंघ को छोड़कर एक नयी जनता-पार्टी का गठन किया जाए। अब चन्द्रशेखर भी चेत गये। उन्होंने समझौता करने का प्रयास किया। उनके घर पर हुई बैठक में भा. लो. द. के सदस्यों ने नेतृत्व परिवर्तन की मांग की। उसी दिन अटल बिहारी वाजपेयी तथा जार्ज फर्नाण्डिस ने भी नेतृत्व परिवर्तन की मांग की थी, लेकिन मोरारजी ने पद छोड़ने से स्पष्ट इंकार कर दिया। केवल संगठन-कांग्रेस को छोड़कर शेष प्रायः सभी दल नेतृत्व परिवर्तन के पक्ष में थे। लेकिन मोरारजी के अड़ियल रुख ने जनता-पार्टी के विघटन का मार्ग खोल दिया।

नयी पार्टी के गठन के प्रश्न को आगे बढ़ाने के लिए जार्ज फर्नाण्डिस तथा हेमवतीनन्दन बहुगुणा ने मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र दे दिये। साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) ने अविश्वास प्रस्ताव के समर्थन की घोषणा कर दी। अब मोरारजी देसाई की समझ में, स्थिति की गम्भीरता आई और उन्होंने अपने मंत्रिमंडल का त्याग-पत्र राष्ट्रपति के पास भेज दिया। इस प्रकार, मोरारजी देसाई के अड़ियल स्वभाव, गैर-लोकतांत्रिक कार्य और जनता-पार्टी के घटकों में तालमेल

स्थापित कर पाने की विफलता के परिणाम-स्वरूप उनका भी पराभव समीप आ गया और जयप्रकाश नारायण तथा चौधरी साहब के कठोर परिश्रम के बाद बना जनता-पार्टी का महल भी धराशायी हो गया और इस के साथ अन्त हो गया उस योजना का, जो जनतापार्टी के मंच से, देश को सशक्त तथा समृद्ध बनाकर स्वाधीनता का सुखद परिणाम देश की अधिकांश जनता तक पहुंचाना था।

संदर्भ

1. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ द मैसेज : चौ. चरण सिंह, पृ. 39
2. वही
3. वही
4. वही, पृ. 40
5. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृ. 149
6. वही
7. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ द मैसेज : चौ. चरण सिंह, पृ. 40
8. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृ. 146
9. वही, पृ. 147
10. वही
11. वही
12. वही
13. वही, पृ. 146
14. वही, पृ. 147
15. वही, 147